छत्रपति शिवाजी

मूल लेखक

लाला लाजपतराय

सम्पादक तथा भाषा–परिष्कारक

डॉ. भवानीलाल भारतीय

विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द

www.hindustanbooks.com

ISBN: 978-81-7077-081-7

© सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशकः **विजयकुमार गोविन्दपुरम हासानन्द**

4408, नई सड़क, दिल्ली–110006

दूरभाषः 23977216, 65360255

E-mail : ajayarya16@gmail.com

Website : www.vedicbooks.com

वैदिन–ज्ञान–प्रकाश का गरिमापूर्ण 87 वां वर्ष (1925 – 2012)

संस्करण : 2012

मूल्य : 50.00

मुद्रक : गोयल एंटरप्राईज़िस, दरियागंज, नई दिल्ली– 110002

CHHATRAPATI SHIVAJI by LALA LAJPAT RAI *Edited by Prof. Bhawanilal Bhartiya*

www.hindustanbooks.com

विषय क्रम

	सम्पादकीय	4
	विज्ञप्ति	7
अध्याय	1. वंश परिचय	31
	2. शिवाजी का जन्म और बाल्याकाल	38
	3. शाहजी का कैद होना और छुटकारा	46
	4. मुग़ल वंश के विरूद्व शिवाजी की कार्यवाही का आरम्भ	51
	5. अफज़ल खां की घटना	57
	6. मुग़ल वंश का सामना	61
	7. महाराजा शिवाजी के अन्य कार्य	75
	8.दिल्ली दरबार और शिवाजी	82
	9. शिवाजी का अभ्युदय	89
	10. बीजापुर ओर गोलकुण्डा शिवाजी को कर देने लगे	92
	11. मुग़ल सम्राट् से मुकाबला, सिंहगढ़ की लड़ाई, तानाजी का बलिदान	94
	12.कर्नाटक की चढ़ाई	110
	13. शिवाजी का स्वर्गवास	117
	14. शिवाजी का चालचलन	118
	15. राज्य का प्रबन्ध	122

www.hindustanbooks.com

सम्पादकीय

लाला लाजपतराय अपने युग के महान देशभक्त, राष्ट्रनेता तथा स्वतन्त्रता सेनानी तो थे ही, वे एक सिद्वहस्त लेखक तथा साहित्यकार भी थे। उर्दू और अंग्रेजी उनकी विचाराभिव्यक्ति की प्रमुख भाषाएं थीं। वे पंजाब में जन्में और वहीं उनका प्रमुख कार्यक्षेत्र रहा। इस प्रान्त में उर्दू का प्रचलन मुसलमानी शासन से लेकर अंग्रेजी हकूमत तक रहा। लालाजी ने अपने प्रमुख ग्रन्थ उर्दू में लिखे हैं। कालान्तर में जब वे राजनीति के क्षेत्र में आये तो उन्हें अपने विचारों को व्यक्त करने के लिए अंग्रेजी का सहारा लेना पड़ा। वकालत जैसे व्यस्त व्यवसाय में आकण्ठ मग्न रहने पर भी लालाजी अध्ययन के लिए पर्याप्त समय निकाल लेते थे। महापुरूषों के जीवनचरितों को पढ़ना तथा उन पर मनन करना उनकी पहली प्राथमिकता थी। स्वदेश के इतिहास का अध्ययन भी उन्होंने गम्भीरता पूर्वक किया था और इस विषय से सम्बन्धित अनेक स्वदेशी एवं विदेशी लेखकों के ग्रन्थों को पढ़ा था। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में उनकी महापुरूषों के विशद जीवनचरित लिखे। योगिराज कृष्ण, छत्रपति शिवाजी, सम्राट् अशोक, महर्षि दयानन्द तथा अपने सहपाठी एंव वैदिक विद्वान पं. गुरूदत्त विद्यार्थी के प्रामाणिक जीवनचरित लिखने के साथ साथ उन्होंने इटली को स्वाधीनता दिलाने वाले ग्वीसेप मैजिनी तथा वीर गैरीवाल्डी के जीवनचरित भी लिखे। इन दो विदेशी महापुरूषों ने लालाजी को अत्याधिक प्रभावित किया था।

जिस समय वे मराठा वीर छत्रपति शिवाजी का जीवनचरित लिख रहे थे उस समय तक इस महापुरूष के बारे में अधिक गहरा ऐतिहासिक अनुसंधान नहीं हुआ था। खाफी

www.hindustanbooks.com

खां जैसे एकाध मुसलमान इतिहासकार द्वारा लिखे गये वृत्तान्त के अतिरिक्त कुछ विदेशी लेखकों के ग्रन्थ इस विषय पर उपलब्ध थे।शायद मराठी में कुछ सामग्री रही होगी। लालाजी ने सभी उपलब्ध सूत्रों को समन्वित कर छत्रपति शिवाजी शीर्षक यह जीवनी लिखी। इसके पश्चात् ही बंगाली इतिहासकार सर यदुनाथ सरकार द्वारा लिखित शिवाजी का प्रामाणिक इतिवृत्त प्रकाश में आया किन्तू लालाजी इन नवीनतम शोध–सामग्री का लाभ नहीं ले सके थे।

शिवाजी महाराज के जीवनवृत्त को प्रस्तुत करने से पहले लालाजी ने 'विज्ञप्ति' शीर्षक से इस ग्रन्थ की एक विस्तृत भूमिका लिखी। इसमें उन्होंने भारतीय इतिहास का सिंहावलोकन करते हुए हिन्दू राष्ट्र, धर्म एवं समाज के पतन के विभिन्न कारणों की समीक्षा की। साथ ही यह भी बताया कि मुसलमानी शासकों द्वारा किये जाने वाले अत्याचारों का प्रतिरोध करने के लिए पंजाब में सिख, राजपुताना में महाराणा प्रताप और दुर्गादास तथा दक्षिण भारत में मराठा शक्ति का किस प्रकार उदय हुआ और इन प्रबल शक्तियों ने किस प्रकार दुर्दमनीय इस्लामी मतान्ध शासकों के प्रहार का मुकाबला किया। इस विज्ञप्ति से लालाजी का व्यापक इतिहास परिशीलन तथा विचरण विवेचन–क्षमता का पता चलता है।

लालाजी के द्वारा लिखे गये ये जीवनचरित हमारे अनुमान से उन्नीसवीं शताब्दी की समाप्ति के पहले ही लिखे जा चुके थे। राष्ट्र नेता की भव्य छवि को धारण करने वाले लालाजी का पाठक वर्ग देशव्यापी रहा होगा, यह तो सत्य ही है। अतः उनके लिखे जीवनचरितों का तत्काल हिन्दी अनुवाद हुआ और पाठकों को ये जीवनियां सुलभ हो गई। तथापि यह ध्यान रखना होगा कि आज से सौ वर्ष पहले का हिन्दी गद्य न तो परिष्कृत था और न गद्य लेखन में एकरूपता आ पाई थी। शब्दों के रूप अभी स्थिर नहीं हुए थे और वाक्य–रचना भी प्रायः अटपटी रहती थी। छत्रपति शिवाजी के प्रस्तुत हिन्दी

अनुवाद की भी यही स्थिति थी, किन्तू आज के पाठकों के समक्ष यह महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ सुसम्पादित रूप में जाये, इस तथ्य को ध्यान में रखकर सम्पादक ने इसके कुछ अंश का पुनर्लेखन किया है तो अवशिष्ट अध्यायों की भाषा का परिष्कार कर उसे अद्यतन गद्य के निकट लाने का प्रयास किया है। ऐतिहासिक दृष्टि से इस ग्रन्थ में क्या कुछ है, इसकी समीक्षा तो मराठा इतिहास के प्रामाणिक विद्वा नही करेंगे तथापि सर्वसाधारण को शिवाजी महाराज की वीरता, पराक्रम, धर्मप्रेम तथा देशभक्ति की एक मनोज झांकी मिलेगी, इसी विश्वास के साथ इस ग्रन्थ को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया जा रहा है।

भवानीलाल भारतीय

शान्तिनिकेतन,

3/5, शंकर कालोनी,

श्रीगंगानगर (राजस्थान)

ज्येष्ठ शु. एकादशी 2061 वि.

www.hindustanbooks.com

विज्ञप्ति

समय के परिवर्तन में जातियों का उत्थान अथवा पतन सहज स्वाभाविक होता है। किसी समय उन्नतिशील रही कोई जाति जब पतन के गहरे गह्वर में जा गिरती है, उस समय सिवाय अपने विगत वैभव को चिन्तन करने के, उसके पास उत्साहवर्धन का कोई साज सामान नहीं रहता। प्राचीन काल की वैभवशाली और सभ्य जातियों में आज कितनी शेष रही हैं ? मिस्त्र में पिरैमिडों का निर्माण करने वालों की वह पुरानी सभ्यता आज कराल काल के गाल में विलीन हो गई है। इन पुरातन जातियों में चीन का राष्ट्र आज भी जीवित है। रोम नष्ट हो गया, यूनानी मेक्सिको नष्ट हो गया किन्तू नष्ट होते होते उसने एक बार करवट बदली और अपने भविष्य के निर्माण में तत्पर हो गया। एक अन्य जाति भी है जिसकी गौरव पताका किसी समय सारे संसार में लहराई थी, उस समय जब कि वर्तमान में सभ्य कहलाने वाली जातियों का कहीं अता पता नहीं था। इस जाति के शास्त्र और वाणी, धर्म और दर्शन, शील और चरित्र, वीरता और गम्भीरता सभी कुछ सर्वोच्च थी। इसका साक्षी है कि यह जाति की कीर्ति और सभ्यता का गौरव गान कर रहा है।

इस जाति की भाषा ने संसार की विभिन्न प्रचलित भाषाओं को जन्म दिया है। इसके शिल्प और ज्ञान को अन्यों ने सीखां इस जाति के आविर्भाव के पश्चात् न जाने कितनी जातियां इस पृथ्वी पर जन्मीं और नष्ट हुई किन्तू समय के घात प्रतिघात को सहते हुए आज भी यह जाति जीवित है, यद्यपि जराजीर्ण अवश्य हो गई है।

अनेक लोग हमारी उक्त धारणा से सहमत नहीं हैं किन्तू उन्हें यह जान लेना चाहिए कि हमारे उक्त कथन को अनेक पाश्चाात्य विद्वानों ने अपनी खोज और शोध के द्वारा सत्य पाया है। यह स्वीकार किया जा चुका है कि संस्कृत भाषा वर्तमान में प्रचलित इण्डो–आर्यन परिवार की भाषाओं की जननी है। इस परिवार में यूरोप की प्रायः अधिकांश भाषाओं के अलावा ज़ेंद पुरानी फारसी तथा पश्तों आदि भाषांए भी सम्मिलित हैं। यह सम्भव है कि अन्य भाषाओं का मूल भी इसी संस्कृत भाषा को मान लिया जाये।

कालक्रम से भारत में अनेक मतों का प्रचलन हुआ। जिस बौद्व धर्म के अनुयायियों की संख्या इस विश्व में बहुत अधिक है, उसका जन्म भी भारत में हुआ और इसके मन्तव्यों पर वैदिक धर्म का प्रभाव प्रत्यक्षयता दिखाई पड़ता है। पारसी मत के प्रवर्त्तक महात्मा ज़र्दुश्त की मान्यताएं बहुत कुछ वैदिक धर्म पर आधारित हैं और इसकी प्रधान पुस्तक ज़ेंदावस्ता में आर्य जाति के पुरातन सिद्वान्त ही प्रकारान्तर से लिपिबद्व किये गये हैं। ईसाइयत के पुराने नैतिक सिद्वांतों को भी प्राचीन वैदिक ग्रन्थों में बीज रूप में देखा जा सकता है।

डा. हेयर के अनुसार इस्लाम धर्म के नेता ने सीरिया की एक धर्मसभा में धर्मचर्चा की थी। कतिपय ईसाइयों ने बौद्व धर्म और ईसाई मत में समानता तो स्वीकार की है किन्तू वे बौद्व धर्म की उत्पत्ति ईसाई मत से मानते हैं। इस धारणा में सत्य नहीं है। भारत में बौद्व धर्म ईसाई मत के आविर्भाव से पहले उत्पन्न हो चुका था। अतः यह स्पष्ट है कि ईसाई मत की उत्पत्ति बौद्व मत से हुई है। आर्यों के मान्य ग्रन्थ वेद संसार के प्राचीनतम धर्मग्रन्थ हैं। इसी तथ्य से यह सिद्व हो जाता है कि आर्य जाति संसार की प्राचीनतम जाति है। इस जाति में पाई जाने वाली विद्या, इसका धर्म तथा इसकी सभ्यता ही इसके प्राचीनतम होने के प्रमाण हैं।

जिस जाति ने गाणित और ज्योतिष विद्या का गूढ़तम

अध्ययन किया वह आज अधोगति को प्राप्त हो गई है। जिस जाति की नींव सभ्यता के उच्च स्वरूप पर रखी गई हो, उसके लिए आवश्यक है कि अन्य जातियों के ग्रन्थों का अध्ययन करने की अपेक्षा वह स्वयं के ग्रन्थों का ही परिशीलन करे। यह सब कुछ होने पर भी आर्य जाति का क्रमबद्व इतिहास नहीं है। इस विषय में कुछ लोगों का कहना है कि इतिहासलेखन की ओर हमारे पूर्वजों ने ध्यान नहीं दिया। कुछ अन्यों का ख्याल है कि हमारे अनके ग्रन्थ और उनसे भरे पुस्तकालय नष्ट कर दिये गये । इन बातों में यदि सच्चाई है तो हम बिना संकोच कह सकते हैं कि आर्य जाति का इतिहास तथा उसके उपकरण विद्यमान हैं और यदि कोई

www.hindustanbooks.com

शोधकर्ता संस्कृत के ग्रन्थों के आधार पर इतिहास के तथ्यों का अन्वेषण करे तो बहुत कुछ जानकारी मिल सकती है।

आर्य जाति की पुरातनकालीन उन्नति के ज्ञान के लिए हमें संस्कृत विद्या का अध्ययन करना होगा। किन्तू प्रश्न होता है कि जब तक संस्कृत ग्रन्थों की सहायता लेकर भारत का इतिहास लिखा जाये तब तक हमें क्या करना है? यह प्रश्न हमें चिन्ताग्रस्त कर देता है। **सच्चाई यह है कि आज इस देश के हिन्दू बालकों को जो इतिहास पढ़ाया जाता है वह अविश्वसनीय तथा पक्षपातयुक्त है। आर्य जाति के इतिहास के अध्ययन में अनके कठिनाइयां उत्पन्न की गई हैं।** संस्कृत भाषा में अनेक ग्रन्थ नष्ट हो गये है और यही कारण है कि इतिहास के लेखकों के द्वारा भी अनेक भूलें हुई हैं। जब संस्कृत के लेखकों के द्वारा भी भूलों का होना सम्भव है तो उन लोगों का तो कहना ही क्या, जो इस भाषा को अशिक्षित लोगों की भाषा मानते हैं तथा जिनकी धारणा है कि आर्य जाति ने उन्नति के पथ पर चलना कभी सीखा ही नहीं था।

हिन्दू जाति की उन्नति के बारे में पश्चिम के विद्वानों ने बहुत कुछ लिखा है किन्तू मुसलमान लेखकों का इस ओर ध्यान कम गया है। पाश्चात्य विद्वानों के भी दो प्रकार के लेख मिलते हैं। **प्रथम कोटि में वे लोग हैं जिन्होंने पक्षपातरहित होकर लिखा है, यद्यपि इनकी संख्या कम है। इन लोगों में भी वे लोग और भी कम हैं जो हमारी जाति के प्रति सहानुभूति रखकर लिख सके हैं। खेद इस बात का है कि इस कोटि के ग्रन्थों तक हमारे विद्यार्थियों की पहुंच बहुत कम है। आज जो इतिहास पढ़ाये जाते हैं वे इतने विचित्र हैं कि उनके सिर, पैर का कुछ पता नहीं लगता। जिन स्वदेशी विद्वानों ने हमारे देश का इतिहास लिखा उन्होंने भी स्वंय का अनुसंधान न करके पाश्चात्य विद्वानों का ही अनुसरण किया है।** यही कारण है कि हमारा इतिहास अभी तक अधूरा है। हिन्दू सन्तान और हिन्दू विद्यार्थियों का यह कर्त्तव्य है कि वे इस कमी को पूरा करें। जब तक यह कार्य नहीं हो जाता तब तक उपलब्ध अनुसंधान के आधार पर ही ऐसा इतिहास लिखा जाना चाहिए जो पक्षपात शून्य हो और योग्य लेखकों के कठिन परिश्रम का सार हो, जिसे पढ़कर हमारे बच्चें इस बात को जान सकें कि हमारे पूर्वज सभ्यता के किस उच्च शिखर तक पहुंच थे और जहां से वे अधोगति के गर्त में भी गिरे।

उन्नति के इतिहास के अध्ययन के साथ साथ अवनति के इतिहास अत्यन्त शोचनीय रहा है। इस इतिहास को मुसलमानों ने लिखा जिसमें उन लेखकों का पक्षपात स्पष्ट दिखाई पड़ता है। इसमें लेखकों को दोष देना भी उचित नहीं है क्योंकि ये लेखक मुसलमानी दरबारों में रहते थे। बादशाहों को प्रसन्न रखना इनका कर्त्तव्य था और इस लेखन के बदले उन्हें भरपूर पारितोषिक मिलता था। इन इतिहासों में कदम कदम पर पक्षपात और आत्मप्रशंसा के चिन्ह दिखाई पड़ते हैं। ऐसे ग्रन्थों को लिखने के लिए बादशाहों के द्वारा लेखकों को मजबूर किया जाता था। इन ग्रन्थों में मुसलमानों की वीरता, हिम्मत

www.hindustanbooks.com

और विजय के वृत्तान्त को अतिश्योक्तिपूर्ण ढंग से लिखा जाता था। ये लोग जहां हिन्दुओं के विजय का समाचार लिखते तो उसका कारण चालाकी या चालबाजी बता देते थे। अनेक स्थानों पर हिन्दुओं को काफिर और कमजोर जैसे निन्दास्पद शब्दों से सम्बोधित किया गया है। यदि अंग्रेज जैसी सभ्य जाति के लोग भी अपनी मातृभूमि के लिए प्राणों तक को न्यौछावर करने वालों को डाकू कहने में नहीं सकुचाते तो इन मुसलमान लेखकों को क्या दोष दें? **देशप्रेमी लोगों को दोहरी लड़ाई लड़नी पड़ती है। प्रथम अपनी जाति के अधीन नहीं हो सकती जब तक कि उसमें अपने ही देश के साथ घात करने वाले देशद्रोही पैदा न हो। ऐसे देशद्रोही देश का उद्वार करने वाले लोगों के मार्ग में बाधक बनते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि देशद्रोहियों का बल न बढ़ने पाए ज्यों ही ये सर उठाएं, उनको कुचल दिया जाये।** इस प्रकार देश के उद्वारक ऐसे काम भी करते हैं जिससे देशद्रोहियों का विनाश हो। ऐसा करने में उनका स्वार्थ नहीं होता, अपितू वे शत्रु की शक्ति को नष्ट करने के लिए ही ऐसे काम करते हैं। योरोपियन सेनापति इन कामों को कर्त्तव्य समझ कर करते हैं, किन्तू अन्य लोग उस कार्यवाही को लूटपाट या डाका डालना कहते हैं। जब आजकल की सभ्य जातियों का यह सच है तो हम मुसलमान लेखकों को क्यों दोष दें?

यह सब तो प्रसंगवश लिखना पड़ा। वास्तविक प्रश्न यह है कि हम अपने अवनति के इतिहास को कहां से पढ़ना शुरू करें? प्रथम तो हमें इन कारणों का विचार करना होगा जिनसे हम इस अधोगति को प्राप्त हुए। फिर यह भी सोचना होगा ि कइस समय तक हम अधोगति के गहरे गढ़े में क्यों पड़े हैं, यह और भी दुर्भाग्य की बात है कि मुसलमान लेखकों के द्वारा लिखी गई पुस्तकों के अलावा हमारे पास कोई दूसरी साम्रगी नहीं है। मुसलमानी इतिहासों में हमें तथा हमारी जाति को कायर सिद्व किया गया है तथा हम पर बेइमानी तथा दगाबाज़ी के लांछन लगाये गये हैं। ये लांछन तो कायरता से भी बढ़कर हैं। कुछ यूरोपियन विद्वानों ने सच्चाई को खोलकर लिखा है और हिन्दुओं की वीरता और गम्भीरता की प्रशंसा भी की है किन्तू कुछ अन्य यूरोपीयन विद्वानों ने मुसलमान लेखकों की हां में हां मिलाई है। ग्रान्ट डफ एक प्रसिद्व इतिहासकार हैं जिन्होंने महाराष्ट्र जाति का इतिहास लिखा है। इसमें उन्होंने हिन्दुओं के बारे में मुसलमानों द्वारा लिखे गये इतिहास को सच माना है। फरिश्ता नामक इतिहास लेखक लिखता है कि 1871 में पुर्तगालवासियों ने मुसलमानी सेना को शराब को शराब पीलाकर मतवाला बना दिया। ग्रान्ट डफ ठन बातों को झूठा मानते हैं और लिखते हैं कि मुसलमानों को जब हार का सामना करना पड़ा तो उसके मूल में दगाबाज़ी और विश्वासघात ही था। फरिश्ता की विश्विसनीयता कितनी है इसके लिए इस योग्य अंग्रेज लेखक का यह कथन ही काफी है।

ख़ाफी खां एक अन्य लेखक है जिसके लिखे इतिहास से पर्याप्त सहायता ली जा सकती है। उसने जहां भी हिन्दू वीरों की कथा कही उन्हें घृणास्पद शब्दों से सम्बोधित किया। क्या ऐसे

इतिहास ग्रन्थों से हम अपने बच्चों को वास्तविकता से परिचित करा सकते है? सच तो यह है कि आजकल जो इतिहास पढ़ाया जाता है वह किसी स्वतन्त्र अनुसंधान के आधार पर नहीं लिखा गया। अतः आवश्यकता इस बात की है कि हिन्दू स्वयम् अपने अनुसंधान के आधार पर अपना इतिहास लिखें और उन पुस्तकों से भी सहायता लें जो सच्चाई को प्रस्तुत करती हैं।

इस खोज में हमें हिन्दू लेखकों द्वारा लिखे गये कुछ

ऐसे भी इतिहास मिलेंगे जो मुसलमानों द्वारा लिखें गये इतिहासों से भी निम्नकोटी के हैं। कारण कि जिस लेखक ने केवल किसी को खुश करने के लिए ही जो लिखा उसका ध्यान सच्चाई की ओर नहीं रहेगा। उसका ध्यान तो खुद को मिलने वाले पुरस्कार की ओर ही होगा। तथापि कुछ इतिहास लेखक ऐसे भी हैं जो किसी पारितोषिक की परवाह किए बिना लिखते हैं। अंग्रेजी इतिहासकार इसी कोटी में आते हैं और इसके लिए हमक उनके चिर कृतज्ञ रहेंगे। भारत में ऐसा कौन हिन्दू है जो टॉड साहब 1 द्वारा लिखे गये राजस्थान के इतिहास को पढ़कर उनका कृतज्ञ नहीं होगा। यदि इस देश के राजा अपने पूर्वजों की वीरता की कहानियां पढ़ने का अवसर मिलेगा।

भारत के दक्षिण में एक और जाति है जो सदा अध्ययन में लीन रही और जिसके पास अपनी जाति का इतिहास कई खण्डों में मौजुद है। यह मराठा जाति है। मेरा विश्वास है कि इस प्रकार का इतिहास भारत के अनेक प्रान्तों की हिन्दू जातियों के पास भी है जिससे उन्हें अपनी अवनति के कारणों का बोध होता है। यदि सब को एकत्र किया जाये तो हमारी इस विशाल जाति की गिरावट का इतिहास जानने का पर्याप्त मसाला मिल जायेगा। प्रायः देखा जाता है कि जिसके जी में जो आता है वह हिन्दुओं को डरपोक व कायर कहने में कोई संकोच नहीं करता। अंग्रेज या मुसलमान ऐसा कहें तो उसका कुछ कारण हो सकता है किन्तू आश्चर्य इस बात का है कि खुद हिन्दू जाति को अपनी भीरूता का कुछ ऐसा ही विश्वास हो गया है कि वह इससे भिन्न कुछ मानने को तैयार ही नहीं। सबसे पहले तो हमारे मदरसों में मुल्लाओं ने, इसके बाद स्कूलों के मास्टरों ने और फिर आगे कालेजों में अंग्रेजी ने हमें यही पढ़ाया कि हमारी जाति की कायरता का कारण हमारे दार्शनिक विचार हैं। किन्तू सूक्ष्मदर्शिता और कायरता को

पर्याय नहीं कहा जा सकता । यदि अंग्रेज जाति में हक्सले और डारविन जैसे दार्शनिकों के होने पर भी वीरता आ सकती है तथा अफलातून प्लेटो अरस्तु, हेगल, शिलर, गेटे, मिल्टन तथा शॉपनहार जैसे दार्शनिकों और कवियों को उत्पन्न करने वाली जातियों में भी वीर हो सकते हैं तो कोई कारण नहीं कि दार्शनिकों को उत्पन्न करने वाली हिन्दू जाति में वीर न हुए हों। ईसा की इस शिक्षा के रहने पर भी कि ''कोई तुम्हारे एक गाल पर थप्पड़ मारे तो दूसरा भी उसके सामने कर दो।''

ईसाई जातियां बहादुर रह सकती है और मुसलमान लोग सूफियों के अद्वैतवाद की शिक्षा का प्रचार करते हुए भी वीर और उत्साही रह सकते है तो कोई कारण नहीं कि हिन्दू अपने विज्ञान और दर्शन के कारण अपनी वीरता खो बैठें। यह कहना तो केवल हेत्वाभास है। ऊपर जो कुछ कहा गया वह विपक्षियों के आधार पर कहा गया। उनकी राय हमारे लिए इसलिए लाभदायक है क्योंकि उन पर हमारे पक्षपाती होने का आरोप तो कदापि नहीं लग सकता। जो जाति अपने पतन के युग में भी राजा कर्ण, गोरा और बादल, महाराणा सांगा और प्रताप, जयमल और फत्ता, दुर्गादास और शिवाजी, गुरू अर्जुन, गुरू तेग बहादुर, गुरू गोविन्दसिंह और हरिसिंह नलवा जैसे हजारों शूरवीरों को उत्पन्न कर सकती है उस आर्य हिन्दू जाति को हम कायर कैसे मान लें? जिस देश को स्त्रियों ने आरम्भ से आज तक श्रेष्ठ उदाहरणों को प्रस्तुत किया है, जहां सैकड़ों स्त्रियों ने अपने हाथों से अपने भाइयों, पतियों और पुत्रों की कमर में शस्त्र बांधे और उनको युद्ध में भेजा, जिस देश की अनेक स्त्रियों ने स्वयं पुरूषों का वेश धारण कर अपने धर्म व जाति की रक्षा के लिए युद्ध क्षेत्र में लड़ कर सफलता पाई, अपनी आंखों से एक बूंद भी आंसू नहीं गिराया, जिन्होंने अपने पातिव्रत धर्म की रक्षा के लिए दहकती प्रचण्ड अग्नि में प्रवेश किया, वह जाति यदि कायर है तो संसार की कोई जाति वीर कहलाने का दावा नहीं कर सकती।

हिन्दुओं की अवनति के काल में भी उनकी धार्मिकता, पवित्रता तथा वीरता के अनेक प्रमाण मिलते हैं। यह तो सत्य है ि कइस जाति में समय समय पर अनेक कायर, देशद्रोही, अधर्मी तथा विश्वासघातक भी उत्पन्न हुए, जिन्होंने नितान्त स्वार्थवश अपने धर्म और जाति को दुश्मनों के हाथ बेच डाला किन्तू ऐसे विषम काल में भी, मुसलमानों की अधीनता के काल में भी अनेक शूरवीरों को उत्पन्न कर यदि यह हिन्दू जाति अपने धर्म पर स्थिर रह सकी तो संसार में इसका उदाहरण अन्यत्र कहां मिलेगा? क्या कोई जाति इस्लाम के अन्धे जोश, वीरता और साहस के सामने अपना सिर ऊंचा खड़ा कर रह सकती थी? हजार वर्षो तक ऐसे निर्मम और कठोर शासकों के अधीन रह कर आज भी 20 करोड़ हिन्दू2 अपने पूर्वजों के धर्म पर स्थिर हैं। आज भी भारत के मुसलमानों में अधिकांश उन हिन्दुओं की ही संतान हैं जिन्हें तलवार के भय या धन के लालच से इस्लाम को स्वीकार करने के लिए मज़बूर किया गया था। हिन्दुओं की वीरता और साथ ही कायरता की यदि तुलना करनी हो तो यूरोपीय देश इटली के इतिहास से तुलना कीजिए। आज हजार वर्ष से अधिक समय हुआ एशिया और तुर्को के ईसाई भी तुर्को के प्रभाव से मुक्त नहीं हो सके हैं।

सौ वर्ष पूर्व तक एशियायी और यूरोपीयन तुर्को में ईसाइयों की बस्ती का कोई ऐसा भाग नहीं था जो स्वतन्त्र हो। सैकड़ों वर्षो तक ईसाई लोग तुर्को में अपना प्रभुत्व स्थापित नही कर पाये। यह तो सत्य है कि 19 वीं शताब्दी में कुछ यूरोपीयन देशों की सहायता से तुर्को के कुछ हिस्से स्वतन्त्र हो गये थे, तथापि इस देश के किसी भी भाग में स्वतंत्र ईसाई राज्य की स्थापना नहीं हो सकी थी। इसके विपरीत हम भारत में देखते हैं कि कठोर मुसलमानी शासन में भी भारत के उत्तर, पश्चिम तथा मध्य भाग में हिन्दू राज्यों की स्वतन्त्र सत्ता बनी रही। इन हिन्दू राजाओं ने मुसलमानी तलवार की उपेक्षा कर अपनी आजादी को स्थिर रखा।

मुसलमान इतिहास इस बात के साक्षी हैं कि इस्लाम के प्रारम्भिक आक्रमणकारियों को यह विश्वास हो गया था कि उनका मुकाबला एक शक्तिशाला जाति से होने वाला है। यह तो हिन्दुओं की आपस की फूट तथा धर्महीनता ही थी ि कवे अपने शत्रु को नीचा नहीं दिखा सके। ग्यारहवीं शताब्दी तक लगातार विदेशी मुसलमान इस देश में लुटेरों की भांति आते रहे और यहां का धन–वैभव लूट कर ले जाते रहे। महमूद ग़जनवी के समय तक भारत के कुछ ही किले ऐसे थे जिन पर मुसलमानों का अधिकार था। इनमें से भी बहुतों को हिन्दुओं ने पुनः अपने अधिकार में ले लिया था। भारत में मुसलमानी शासन की नींव जमाने वाला, प्रथम विदेशी आक्रमणकारी, हिन्दुओं की स्वतन्त्रता को छीनने वाला शहाबुद्दीन गौरी था। दिल्ली के सिंहासन पर अपना अधिकार जमाने वाला पहला मुसलमान बादशाह कुतबुद्दीन एबक था जो गुलाम वंश का था, जिस का कार्यकाल 1205 या 1206 ई. माना जा सकता है।

बारहवीं से सोलहवीं शताब्दी, अथवा यों कहें कि सम्राट् अकबर के शासन काल तक इस देश में अनेक स्वतन्त्र हिन्दू नरेश थे। भारत के मानचित्र पर हम दृष्टिपात करें तो इसमें आपको राजपुताना का विशाल क्षेत्र दिखाई देगा। मूलतः यह उतना छोटा नहीं था जितना आज है। वस्तुतः एस समय का यह राजस्थान बहुत बड़ा था। 1395 में दिल्ली के सिंहासन पर बैठने वाला अलाउद्दीन खिलजी प्रथम व्यक्ति था जिसने राजपुताना पर चढ़ाई की 14 वीं शताब्दी के आरम्भ में उसने चित्तौड़ पर चढ़ाई की किन्तू कुछ समय बाद यह प्रदेश पुनः स्वतंत्र हो गया। उसके बाद इस पर हमलाा करने वाला बादशाह अकबर था। अकबर का युद्व में मुकाबला करने में महाराणा प्रताप ने जो वीरता, धीरता तथा गम्भीरता दिखाई वह संसार के सामने प्रत्यक्ष है। महाराणा प्रताप को जैसी पराजय मिली वैसी परमात्मा किसी को न दे। आज

कौन ऐसा हिन्दू है जो राणा प्रताप पर गर्व न करता हो? महाराणा सांगा का दुर्भाग्य था कि अपने ही एक सेनापति के कपटाचरण के कारण उन्हें पराजित होना पड़ा। अन्यथा मुसलमानी राज्य की इतिश्री तो तभी हो गई होती। दैवी विधान में किसी का वश नहीं चलता। यह सत्य है कि महाराणा सांगा की पराजय ने दिल्ली के हिन्दू धर्म में कुछ ऐसे परिवर्तन किये जिनके फलस्वरूप कालान्तर में गुरू गोविन्दसिंह और उनके अनुयायियों जैसे वीर पुरूष भारत में पैदा हुए। राजपुतों ने भी अकबर से पहले तक के काल में पूर्णतया राजनैतिक परतन्त्रता स्वीकार नहीं की थी। अकेला राजपूताना ही भारत का इतना विशाल प्रचण्ड था जिसने मुसलमानी शासन सिंहासन पर मुग़लों के शासन की स्थापना कर दी।

इधर तो दिल्ली का शासन मुगलों के अधिकार में था, उधर पंजाब में एक ऐसे देशभक्त ने जन्म लिया जिसने धर्मप्रचारकों और उपदेशकों के एक ऐसे दल को संगठित किया जिसने मुगल सत्ता का समूल नाश करने का बीड़ा उठाया। जिस समय बाबर ने दिल्ली में मुगल सल्तनत की नींव डाली, उसी समय गुरूनानक ने के बद्वमूल हो जाने के तीन सौ–चार सौ वर्षो बाद तक अपनी आजादी को बरकरार रखा। चार सौ वर्ग मील क्षेत्र वाला उड़ीसा प्रान्त चौदहवीं शताब्दी के अन्त तक स्वतन्त्र रहा। दक्षिण में पश्चिमी घाट का प्रदेश भी स्वतंत्र रहा। 13 वीं शताब्दी में अलाउद्दीन खिलजी ने सर्वप्रथम दक्षिण पर चढ़ाई की। नर्मदा को पार कर खानदेश होता हुआ देवगढ़ तक बढ़ जाने वाला यही पहला मुसलमान हमलावर था। उस समय इसका चाचा ज़लालुद्दीन खिलजी दिल्ली के सिंहासन पर था। अलाउद्दीन ने यों तो यह प्रसिद्व कर रखा था ि कवह अपने चाचा के व्यवहार से क्रुद और रूष्ट होकर दक्षिण की ओर जा रहा था, वस्तुतः उसकी इच्छा दक्षिण विजय करने की थी।

उन दिनों दक्षिण प्रान्त की राजधानी देवगढ़ थी। देवगढ़ का राजा रामदेव राय चुपचाप चैन की बंशी बजा रहा था। उसकी सेना तथा साजसामान अस्तव्यस्त थे। उसकी रानियां तथा बच्चे तीर्थ यात्रा पर निकले हुए थे। जब रामदेव राय ने सुना कि अलाउद्दीन ने राजधानी को अपनी सेना से घेर लिया है तो वह अपने साधारण नौकरों को एकत्र कर आक्रमणकारी का मुकाबला करने का विचार करने लगा, परन्तू ये लोग कब तक शत्रु सेना के सामने टिक पाते? राजा अपने बचाव के लिए एक दूसरे पहाड़ी किले में जा छिपा यह मौका पाकर युवराज अलाउद्दीन खिलजी किले में घुस कर लूटपाट करने लगा और प्रचारित कर दिया कि वह तो थोड़ी सी सेना के साथ आया है, बड़ी सेना साथ लेकर तो खुद बादशाह जलालुद्दीन खिलजी आ रहा है। यह समाचार सुन कर राजा रामदेव राय ने सन्धि करने में ही अपनी भलाई समझी। इधर तो सन्धि की चर्चा चल रही थी, उधर राजा रामदेव राय का पुत्र यात्रा से लौट आया और अपनी सेना के साथ खिलजी के खिलाफ मोर्चा खोल दिया। उसने अलाउद्दीन खिलजी को सामने आकर लड़ने की चुनौती दी। इस अवसर पर खिलजी ने चालाकी से काम लिया । वह अपनी सेना का एक बड़ा हिस्सा लेकर युवराज के सामने आ डटा और कुछ सैनिकों को किले की रक्षा के लिए छोड़ दिया ताकि समय आने पर वह भी सहायता के लिए आ सकें तथा राजा के सैनिकों को यह धोखा हो जाये कि बादशाह जलालुद्दीन की सेना भी आ गई है। अलाउद्दीन की यह चालाकी सफल रही। राजकुमार ने वीरता से युद्व किया किन्तु जब उसने देखा की पराजय सन्निकट है तो उसे एक और विपत्ति का सामना करना पड़ा। उसी समय किले में रूकी खिलजी सेना वहां आ गई। हिन्दू सेना ने समझाा कि यह बादशाह जलालुद्दीन की सेना है। अब उसके पांव उखड़ गये, उसके सिपाई युद्व क्षेत्र से भाग गये और मुसलमानों की विजय हुई। दुर्भाग्य इसे की कहें

कि रसद की सामग्री में जिन्हें आटे के बोरे समझा गया था वे वस्तुतः नमक के बोरे थे। अब राजा रामदेव राय ने पर्याप्त धन तथा राज्य का कुछ इलाका अलाउद्दीन को सौंपने में ही अपनी भलाई समझी और सन्धि कर ली।

इसके बाद अलाउद्दीन के शासन काल में उसके सेनापति मलिक काफूर ने तीन बार दक्षिण पर चढ़ाई की, लूटमार की किन्तु जब दिल्ली का सिंहासन खुद मुसीबतों में फंस गया तो दक्षिण के हिन्दू राजा एक बार पुनः स्वतन्त्र हो गये। अकेला देवगढ़ मुसलमानों के अधीन रहा। इस समय दक्षिण में हिन्दू शक्ति प्रबल हो गई, सब ने मिल कर देवगढ़ कि किले को घेर लिया। उस समय बादशाह खुद सेना लेकर लड़ाई में उतरा। दीनराव नाम के किसी हिन्दू राजा को मुसलमानों ने पकड़ लिया और उसे जिन्दा दीवार में चुनवा दिया। मुसलमानों की नृशंसता का यह एक जीता जागता उदाहरण था। इसके बाद 1323 तक दक्षिण में शान्ति रही। कुछ दिन बाद बादशाह मुहम्मद तुग़लक ने सेना सहित दक्षिण पर चढ़ाई की । चारों ओर लूटपाट का दौर शुरू हुआ। हिन्दू राजधानी तेलंगाना उजाड़ दिया गया। हिन्दू प्रजा ने मुसलमानों की अधीनता में रहने की अपेक्षा देश निर्वासन को स्वीकार किया। दस वर्ष बाद तेलंग देश के इन लोगों ने एक नगर बसाया जिसका नाम विजयनगर रखा गया। धीरे धीरे यह नगर इस देश की राजधानी के रूप में बढ़ चला।पर्याप्त काल तक विजयनगर राज्य स्वतन्त्र रहा किन्तु 1864 में उस क्षेत्र के मुसलमान बादशाहों ने मिल कर उस पर हमला कर किया और तालीकोट की प्रसिद्व लड़ाई में विजयनगर के विख्यात हिन्दू राज्य को नष्ट कर दिया। इस समय तक कर्नाटक तथा पश्चिमी प्रदेश पूर्ण स्वाधीन थे केवल दक्षिण प्रान्त का उत्तरी भाग ही मुसलमानों के अधिकार में था।

सम्राट अकबर के सिंहासन पर बैठने के समय से लेकर सत्रहवीं शताब्दी लगभग 150 वर्ष तक मुसलमानी

www.hindustanbooks.com

साम्राज्य उन्नति करता रहा। अकबर ही पहला मुसलमान बादशाह था जिसने समस्त भारत को एक साम्राज्य के अधीन करने का विचार किया। उसने ठीक सोचा था कि हिन्दुओं के सहयोग के बिना यह कार्य सम्भव नहीं हैं। अकबर ने अपनी चालाकी से हिन्दुओं को इस प्रकार वश में किया जो उनकी गुलामी का ही पर्याय कहा जा सकता है। पराजित हिन्दू अकबर की कूटनीति के वश में होकर स्वयं को सन्तुष्ट समझने लगे। यह तो अकबर की चतुराई का ही नतीजा था कि करोड़ों हिन्दू उसके अनुवर्ती बन गये। आप इतिहास के किसी ग्रन्थ को देखें उसमें आपको इन दो तथ्यों का स्पष्ट उल्लेख मिलेगा–

1. अकबर द्वारा हिन्दुओं को खुश रखने के कारण ही उसे सफलता मिली। 2. हिन्दू सैनिकों ने अपनी वीरता और पराक्रम से मुगल शासन को सुदृढ़ बनाया। अकबर के युद्वों में राजपूत वीरों का बहुत बड़ा योगदान रहा। अकबर ने अपनी बड़ी बड़ी लड़ाइयां हिन्दू सेनापतियों के सहयोग से जीतीं। बीरबल स्वयम् अकबर के पक्ष में लड़ता हुआ मारा गया। अकबर के सहयोगी राजपुतों ने काबुल पर विजय प्राप्त की। कुछ समय तक काबुल में अकबर का एक प्रतिनिधि राजपूत रहता रहा। राजपूतों ने अकबर को जो सहयोग दिया उसका प्रमुख कारण यह था कि बादशाह ने इन राजपुत राजाओं को अपने राज्यों पर शासन करने की छुट दे रखी थी।

   अकबर के पश्चात् जब जहांगीर गद्दी पर बैठा तो उसने अपने पिता के नियमों को जारी रखा। शाहजहां ने भी हिन्दुओं की सहायता से ही राजगद्दी प्राप्त की किन्तु उसने अपने दादा अकबर की नीति को कुछ बदल डाला। शाहजहां के समय तक देश में मजहब के नाम पर पक्षपात की बहुत कम घटनाएं हुई। शाहजहां के दरबार में राजपुतों का वर्चस्व था और वे सम्मान प्राप्त कर चुके थे। यह शाहजहां के समय की बात है कि उसके एक बहुत बड़े मुसलमान सरदार मौहम्मत खां ने

अमरसिंह राठौर का अपमान करना चाहा। मौहम्मत खां को इस बात का घमण्ड था कि बादशाह का उससे पारिवारिक सम्बम्ध है तथापि अमरसिंह ने भरे दरबार में मौहम्मत खां का सिर धड़ से अलग कर दिया। खुद बादशाह महलों में जा छिपा। इसके बाद शाही गद्दी पर औरंगजेब बैठा तो सत्ता प्राप्त करने के लिए उसने अपने भाइयों का खून किया, बाप को कैद में डाला और इस्लामी कट्टरता को पुनः जागृत किया। परिणाम यह हुआ कि हिन्दुओं ने औरंगजेब को चैन से नहीं बैठने दिया। इस समय हिन्दू ने औरंगजेब को चैन से नहीं बैठने दिया। इस समय हिन्दू जाति में फिर परिवर्तन आया। औरंगजेब के पतन से लेकर 1847 के विद्रोह तक मुगलवंश का इतिहास हिन्दुओं की राजनैतिक उन्नति और योरोपियन शक्तियों के ताकत पकड़ने का इतिहास है। भारत के पश्चिमी भाग में भी ऐसी ही परिस्थितियां पैदा हो रही थीं। हम लिख चुके हैं कि 13 वीं शताब्दी के अन्त में मुसलमानों ने विन्ध्याचल के पश्चिम में पैर बढ़ाया था। मोहम्मद तुगलक के मन में यह विचार आया कि दिल्ली के स्थान पर दक्षिण में देवगढ़ को दौलताबाद बाग नाम देकर नई राजधानी बनाई जाये। इस बादशाह के समय में बहुत से आन्तरिक विद्रोह हुए। खुद मुसलमान अफसर भी बागी हो गये, यहां तक कि दक्षिण के सभी हिन्दू मुसलमानों ने एक षड्यत्र रच कर उस की राजधानी दौलताबाद पर अधिकार कर लिया। इन विद्रोहियों ने जाफर खां नामक एक सामान्य व्यक्ति को राज्याधिकार देकर बादशाह बना दिया। इसने अपने वंश का नाम बहमनी रखा। जाफर खां कभी किसी समय किसी ब्राह्मण के यहां काम कर चुका था इसलिए इसने अपने खजाने का स्वामी इसी ब्राह्मण को बना दिया। बहमनी वंश के राजाओं ने हिन्दुओं के साथ अच्छा व्यवहार किया। राज्य के समस्त पहाड़ी किलों का अधिकार हिन्दू सेना और हिन्दू सेनापतियों को दे दिया। इसके बाद दिल्ली के सुल्तान ने बहमनी सेना को पराजित कर दिया। सुलतान अलाउद्दीन के सेना नायक ने एक हिन्दू राजा को

www.hindustanbooks.com

पराजित कर उसे इस्लाम स्वीकार करने के लिए कहा। जब राजा इसके लिए सहमत नहीं हुआ तो हिन्दुओं की प्रबल सेना ने मुसलमानी सेना के सात सौ सिपाहियों को मार कर अपने धर्म की रक्षा की। अब बहमनी राज्य भी पतन की ओर बढ़ चला और इसके स्थान पर पांच मुसलमान बादशाहों ने अपने स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिये। ये थे—1.बरार, 2. बीजापुर, 3. गोलकुण्डा, 4. बीदर, और 5. अहमद नगर। समय के परिवर्तन से ये पांच राज्य तीन बनकर रह गये— बीजापुर, गोलकुण्डा और अहमदनगर। बीजापुर पर आदिलशाही बादशाहों का राज्य रहा और अहमदनगर निजामशाही के नाम से प्रसिद्व हुआ। इसका संस्थापक अहमद नामक व्यक्ति था जिसका बाप ब्राह्यण था और जो बीजापुर में रहता थां अहमद का यह ब्राह्यण पिता एक युद्व में बीजापुर वालों के हाथ पड़ गया और जबरदस्ती मुसलमान बना दिया गया। मुसलमान बन जाने पर इसका अधिकार इतना बढ़ा कि यह बीजापुर रियासत का सर्वोच्च शासक बन गया। इसके बेटे ने बीजापुर के बादशाह से विरोध किया, नई राजधानी कायम की और उसका नाम अहमदनगर रखा। बीजापुर और अहमदनगर दोनों राज्यों की नीति अकबर की नीति के समान थी। दोनों का शासन प्रबन्ध हिन्दुओं के हाथ में था । सभी पहाड़ी किले हिन्दुओं के अधिकार में थे और ऊंचे पद भी हिन्दुओं के पास थे। आदिलशाही राज्य में एक हिन्दू रईस को बारह—हजारी के पद पर नियुक्ति मिली। इस वंश के शासकों ने यह आज्ञा निकाली कि सरकारी दफ्तरों में उर्दू के बजाय मराठी भाषा का प्रयोग किया जाये। राज्यों में हिन्दुओं का जोर बढ़ता रहा। निजामशाही राज्य में भी यही नीति प्रारम्भ में जारी रही और हिन्दुओं को प्रतिष्ठा मिलती रही। बुरहान नामक बादशाह ने अपने प्रधानमंत्री कुंवरसेन को पेशवा का खिताब दिया। किन्तु बाद में इसी वंश के बादशाहों ने शिया और सुन्नी के मतभेद पर

जोर देकर अपने राज्य का नाश कर डाला।

इन मुसलमानी राज्यों के अलावा दक्षिण में विजयनगर का राज्य अन्यन्त शक्तिशाली था। इतिहासकार फरिश्ता इस राज्य को वर्गी कह कर पुकारता है। फरिश्ता ने लिखा है कि वर्गी जाति के लोग मुसलमानों को तंग करते रहे तथा 1578 में इन्हें पराजित किया। बादशाह ने अपने सेनापति की सहायता से इन वर्गी लोगों को वश में करने की चेष्टा की किन्तु एक विश्वासघाती के कारण यह सम्भव नहीं हो सका। बहुत दिनों तक सारे देश में गड़बढ़ी म ची रही। मुगलों ने हिन्दू राजपुतों की सहायता से दक्षिण पर चढ़ाई की । सब से भयंकर आक्रमण औरंगजेब का था जिसने इस्लामी झण्डे के अन्तर्गत सारे भारत में हलचल मचा रखी थी। ठीक इसी समय दक्षिण और पंजाब में दो शक्तिशाली जातियां पैदा हुई जिन्होंने मुसलमानी सत्ता को चकानाचूर कर दिया। इन दोनों शक्तियों के भीतर धार्मिक सुधार का भाव भी काम कर रहा था।

पंजाब में गुरू नानक ने हिन्दुओं को बताया कि वे जातिभेद को त्यागें और ईश्वर के सहारे जीवन बितायें। इस सामायिक शिक्षा का हिन्दुओं पर अच्छा प्रभाव पड़ा। हिन्दुओं में शक्ति का संचार हुआ और मुसलमानों की कट्टरता भी कम हुई। गुरू नानक के बाद के गुरूओं ने अपना यह काम जारी रखा। मुसलमान अधिकारियों ने गुरूमत को फैलता हुआ देखा तो उन्होंने हिन्दुओं को सताना शुरू कर दिया। जब सिखों ने देखा कि अब मात्र ईश्वरभक्ति ही पर्याप्त नहीं है तो गुरूओं ने धर्म रक्षा के लिए तलवार उठाई। सिखों को वीर जाति के रूप में विकसित होता देख कर मुसलमान बौखलाये और उन्होंने सिखों पर सीमातीत अत्याचार करने शुरू किये। यहां तक कि सिखों पर सीमातीत अत्याचार करने शुरू किये। यहां तक कि सिख गुरूओं का भी वध कर दिया गया। किन्तू असन्तोष की जो चिन्गारी सुलगी वह अब बुझने वाली नहीं थी। गुरू अर्जुन ने विपत्तियां झेली किन्तु धर्म नहीं छोड़ा। मतीसिंह तथा अन्य अनके सिखों ने धर्म के लिए दुःख सहे।

गुरू तेगबहादुर के बलिदान ने इस चिनगारी को आग का रूप दे दिया। उनके प्रिय पुत्रों ने अपने पिता के जीवन समर्पण से शिक्षा लेकर धर्म के लिए सर्वस्व बलिदान करने की प्रतिज्ञा की । जिस धर्मयज्ञ में गुरू तेग बहादुर ने स्वयं की बलि दी थी, उसमें उनके पुत्र गुरू गोविन्द सिंह ने अपने चारों पुत्रों की आहुति दे दी। दशम गुरू गोविन्द सिंह ने एक हाथ में भक्ति का प्याला उठाया तो दूसरे हाथ में जाति रक्षा के लिए तलवार धारण की । संसार ने गुरू जी की भक्ति और शक्ति तलवार धारण की। संसार ने गुरू जी की भक्ति और शक्ति के जलवे को देखा।

पंजाब में सिख धर्म जो काम कर रहा था, वही दक्षिण में महाराष्ट्र में हो रहा था। महाराष्ट्र की यह धती स्वामी दयानन्द की जन्मभूमि गुजरात से अधिक दूर नहीं है। पंजाब में धर्मसुधार का जो कार्य गुरू नानक ने किया वही काम महाराष्ट्र के तुकाराम, एकनाथ, नामदेव, ज्ञानेश्वर आदि सन्तों ने किया। छूतछात के भूत को भगा कर इन सन्तों ने सच्ची ईश्वरभक्ति का पाठ पढ़ाया। गुरू गोविन्द सिंह ने तो अपने धर्मात्मा पिता के शव को छूकर शपथ ली थी कि जिन लोगों ने मेरे पिता को मारा है, उनसे मैं बदला अवश्य लूंगा। केवल बदला ही नहीं लूंगा किन्तु इस पवित्र भारत भूमि से अत्याचारियों को समूल नष्ट कर दूंगा। अपने पूर्वजों के धर्म की रक्षा करने के लिए सर्वस्व अर्पित कर दूंगा।

गुरू जी के इन विचारों ने लोगों में देश और जाति सेवा का भाव भरे। ज्यों ही मुगल सेना ने दक्षिण की मुसलमान सल्तनतों का खात्मा करना शुरू किया और औरंगजेब ने मजहबी कट्टरता का नग्न रूप दिखाया, हिन्दुओं को विश्वास हो गया कि अब हमारे धार्मिक अधिकार बच नहीं पायेंगे। नाना प्रकार से हिन्दुओं का धर्म भ्रष्ट किया जाने लगा और उनके दमन में कोई कसर नहीं रखी गई। तत्कालीन हिन्दी कवियों ने ईश्वर भक्ति के काव्य की रचना कर समाज में व्याप्त अधर्म, अत्याचार तथा हिन्दुओं के दमन का सजीव

चित्र अंकित किया है। इस काव्य ने भी अधोगति प्राप्त लोगों को धर्म रक्षा के लिए आने की प्रेरणा दी। शिवाजी महाराज के प्रयत्न भी इसी दिशा में थे। जब हिन्दुओं ने देखा कि हमारी भक्ति और उपासना की स्वतन्त्रता भी मुसलमानों द्वारा बाधित की जाती है तो उनमें स्वधर्म रक्षा का जो जोश उमड़ा उसके आगे मुगल सेना और शाही तलवार भी कांप गई।

शिवाजी और गुरू गोविन्द सिंह पर लिखते समय यदि हम महाराणा प्रताप को भुला दे तो यह अन्याय होगा। मुगलवंश को मजा चखाने में वीर प्रताप तथा उनके वंशजों ने जो किया, उसे भुलाना कठिन है। महाराणा सांगा के राजसिंहासन पर जब प्रताप विराजमान हुए, उस समय मुगलों के अत्याचार सीमातीत स्थिति तक पहुंच गये थे। अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहने वाले महाराणा ने अपने प्यारे बच्चों को भूख से तड़पते और बिलबिलाते देखा तथापि उनके मन में मुगलों की अधीनता स्वीकार करने का विचार एक बार भी नहीं आया। उस समय के राजपुतों में फूट और विरोध पराकाष्ठा पर पहुंच चुका था। खुद महाराणा का भाई शक्तिसिंह अकबर के दरबार में एक पद स्वीकार कर चुका था और बादशाह का पक्ष लेकर महाराणा के विरूद्व तलवार उठा चुका था।

चित्तौड़ का किलाा मुगलों के अधीन था किन्तू अवशिष्ट राजपुताना पूर्ण स्वतन्त्र था। महाराणा प्रताप के बाद उदयपुर की राजगद्दी पर बैठने वाले किसी शासक के मन में प्रताप जैसी देशभक्ति की भावना नहीं जगी। यद्यपि मेवाड़ ने न तो अन्य राजपुत राजाओं की भांति मुगलों को अपनी बहिन बेटियां दीं और न उनकी अधीनता स्वीकार की तथापि यह राज्य भी अपनी स्वतन्त्रता को स्थिर नहीं रख सका। यहां राजनैतिक परिर्वतन का दौर चलता रहता था। राजपुतों के इतिहास में वीर दुर्गादास का नाम आता है जिसने अपने बल और पराक्रम का

परिचय देकर औरंगजेब के गर्व को नष्ट किया था। दुर्गादास जोधपुर के राठौर वंश के सपूत थे। जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंह की काबुल में मृत्यु के पश्चात् जब औरंगजेब नक उनकी रानी और पुत्रों को दिल्ली में बन्दी बना लिया तो इनकी रक्षा करने वाले दुर्गादास ही थे। इन्होंने राजकुमार को सुरक्षित जोधपुर पहुंचाया और मुगलों से युद्व कर मारवाड़ का राज्य पुनः राठौरों को दिलाया। अतः यह स्वीकार करना होगा कि अत्याचारी औरंगजेब के छक्के छुड़ाने में वीर दुर्गादास की भूमिका कम नही थी।

हमने इस देश की अवनति का इतिहास अपने पाठकों के सामने रखा है। हमारा प्रयोजन इतिहास लिखना नहीं है क्योंकि हम जानते हैं कि यह कार्य कठिन तथा समय साध्य है। हम तो अपने भाइयों का ध्यान अपनी विगत अवनति की ओर आकृष्ट करना चाहते हैं और उन लोगों के भ्रम का दूर करना चाहते हैं जो मानते हैं कि हजार आठ सौ वर्षो तक हिन्दू लोग मुसलमानों की गुलामी में रहे ही नहीं। कायरता की कलंक कालिमा हिन्दुओं पर नहीं लग सकती और न कोई यह कहने का साहस करेगा कि हिन्दू कभी कायर थे या भविष्य में होंगे। जाति के तौर पर हिन्दू कभी कायर नहीं रहा। जिस जाति ने अधिसंख्य शूरवीरों को उत्पन्न किया, जिस जाति में राजपूत, सिख, मराठा और जाट जैसी योद्वा जातियां पैदा होती रहीं उसे कायर कहना उचित नहीं। जो मुसलमान हिन्दुओं को कायर कहते हैं वे अपने गिरेबान में मुंह डाल कर देखें, उन्हें सच्चाई का पता चल जायेगा कि उनमें से अधिकांश उन्हीं हिन्दुओं की सन्तान हैं जिन पर वे कायरता का दोष लगाते हैं। भारत के अधिसंख्य मुसलमान रईस हिन्दुओं की संतान हैं। हमारा दावा है कि हिन्दुओं का कोई वर्ग कायर नहीं हैं। कायरता का आरोप मुख्यतः बंगालियों तथा बनियों पर लगाया जाता है किन्तू यह याद रखना होगा कि इन दोनों वर्गो में अनेक वीर हुए हैं। बख्तियार खिलजी ने नदिया बंगाल की विजय

का मनसूबा बनाया किन्तू उसे पराजित होकर लौटना पड़ा। प्रायः वाणिज्य व्यवसाय करने वाले लोग लड़ाई–भिड़ाई से दूर रहते हैं किन्तू राजपूताना के अनेक अग्रवालों ने अपने राज्य की दीवानगीरी तथा खजाने को संभालने के काम को त्याग कर अपने हाथों में तलवार उठाई थी। वे राजपूत सरदारों के साथ युद्वों में लड़े भी थे। महाराष्ट्र के ब्राह्मणों में वीरता आज तक पाई जाती है। क्षत्रिय ही वैश्यों का व्यवसाय धारण कर 'खत्री' बन गये । इन खत्रियों ने महाराजा रणजीतसिंह के समय में जो वीरता दिखाई उसे लोग अभी तक नहीं भूले हैं। सीमान्त प्रदेश के अफगान इन खत्रियों की वीरता से पराजित हैं। हमारे लिखने का अभिप्राय इतना ही है कि मुसलमानी शासनकाल में कोई वक्त ऐसा नहीं था, जब हिन्दुओं में वीरता, धैर्य, बल और पराक्रम की कमी रही हो। यदि हिन्दुओं में वीरता और साथ ही कष्ट सहिष्णुता नहीं होती तो आज भारत में बीस करोड़ हिन्दु नहीं पाये जाते। अब तो अंग्रेजी सेना में भी आधे सिपाही हिन्दुस्तानी हैं। इन फौजों में गोरखा और सिखों को सर्वाधिक सम्मान प्राप्त है। आज महारानी विक्टोरिया 3 के शासन में सर्वत्र शान्ति है इसलिए कोई भी धर्म या समुदाय अपनी वीरता के प्रदर्शन का अवसर प्राप्त नहीं कर पाता। अंग्रेजी सरकार ने अपनी बुद्विमत्ता से समस्त जाति को हथियारों से रहित कर दिया है। अतः यह आशा नहीं होती कि निकट भविष्य में हम लोगों को अपनी वीरता या पराक्रम दिखाने का अवसर मिलेगा। इस समय तो कायरता या वीरता की चर्चा केवल दिल बहलाने या मौखिक शास्त्रार्थ के लिए होती है। अब तो वीरता का उदाहरण क्रिकेट या फुटबाल के मैदान में दिखाने का अवसर मिलता है अतः हम हिन्दु नवयुवकों से कहना चाहते हैं कि वे इन खेलों में पीछे न रहें। यह तो सत्य है कि आज हमारे हाथों में हथियार नहीं है, किन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि हमें अपनी रक्षा तो आप ही करनी होगी। अपने धर्म, कर्म, अपनी धन सम्पत्ति यहां तक कि स्व स्त्री तथा परिवार की रक्षा के

लिए भी शारीरिक बल की आवश्यकता रहती है।

यदि कोई बलवान् चोर या डाकू हमारी उपार्जित सम्पत्ति को छीन ले और हम अपनी बौद्विक उपाधियों की दुहाई देते रहें तो हमारी नादानी होगी। आगे के पृष्ठों में हम शारीरिक शक्ति, बल, पराक्रम और साहस का एक ऐसा उदाहरण पेश करेंगे जिसने स्वधर्म की रक्षा तथा अपने वंश की उन्नति के लिए कैसा पुरूषार्थ किया था। शिवाजी का जन्म ऐसे युग में हुआ था जब भारत से विद्या और धर्मप्रेम प्रायः समाप्त हो चुका था और परिवार के सदस्यों का पारस्परिक विश्वास और प्रेम लुप्त हो रहा था। किसी का धर्म या धन सुरक्षित नहीं था। सचमुच वह समय बड़ा विकट था जबकि हिन्दू और मुसलमान दोनों के लिए युद्व का भय उपस्थित रहता था। उस समय खून की नदियां बह रही थीं। बड़े बड़े शहर विनाश के कगार पर खड़े थे। धनी पल भर में कंगाल हो जाते और दरिद्रों को धनी बनाने में भी देर नहीं लगती थी। न मन्दिर सुरक्षित थे और न मस्जिदें।

ऐसी भीषण स्थिति में जन्म लेकर शिवाजी ने अपने सघन धर्मप्रेम का परिचय दिया और नारियों के सतीत्व की रक्षा की। न केवल अपना ही आचरण शुद्व रखा अपितु किसी भी व्यक्ति को नारी का अपमान करने पर घोर दण्ड दिया। गरीब किसानों की रक्षा की और उनके प्रति सद् व्यवहार किया । उसने ब्राह्मणों की रक्षा की और उनके प्रति सद् व्यवहार किया। उसने ब्राह्मणों की रक्षा की किन्तु परमत का खण्डन भी नहीं किया । यह महापुरूष औरंगजेब के काल का महान् वीर था। एक पक्षपाती मुसलमान इतिहासकार खाफी खां ने शिवाजी को 'काफिर' कहा और उनकी मृत्यु पर लिखा ि कवह नरक में गया तथापि उसने शिवाजी के सदाचार की प्रशंसा ही की है।

इस पुस्तक में शिवाजी का जो जीवनचरित लिखा गया है उसे पढ़ कर पाठकों को निश्चय हो जायेगा कि शिवाजी सचमुच महापुरूष थे। उनमें जैसी प्रबन्ध क्षमता थी वह अन्यत्र

दुलर्भ थी। वे संगठन का महत्त्व तथा संगठन के सिद्वांतों को भली भांति जानते थे। यदि वे आज के युग में होते तो बड़े से बड़े यूरोपीय विद्वानों और सेनापतियों को कुछ शिक्षा दे जाते। वे युद्व–विद्या के निपुण पण्डित थे। शत्रुओं को परास्त करने की तरकीबें उन्हें मालूम थी। वे परम धीर, वीर ओर गम्भीर थे। वीरता और पराक्रम में वे अद्वितीय थे। बादशाह औरंगजेब के एक मंत्री से जब किसी बात पर क्रोधित हुए तो उनमें आत्मविश्वास और निर्भिकता पराकष्ठा की थी। धर्म पर उनका विश्वास उस कोटि का था जिसके कारण औरंगजेब को उनसे मुंह की खानी पड़ी। वे वीरों के प्रशंसक थे तथा सदाचार में अद्वितीय थे। उनका आचरण शुद्व एंव पवित्र था, यही कारण है कि इस महापुरूष की जीवन कथा हम अपने देश के युवकों को सुनाना चाहते हैं। हमें विश्वास है कि इस जीवनचरित को पढ़ कर हमारे युवक भी सदाचारी और देशभक्त बनेंगे। वे ऐसा आदर्श उपस्थित करेंगे जिससे अन्य लोग भी शुद्व और पवित्र जीवन जीना सीखें।

www.hindustanbooks.com

पाद–टिप्पणियां

1. कर्नल जेम्स टाड अंग्रेजी शासन–काल में राजपुताना के राज्यों के लिए गवर्नर जनरल के एजेंट के पद पर रहा। उस का ग्रन्थ एनल्स एण्ड एन्टिक्विरीज और राजस्थान प्रसिद्ध इतिहास है।
2. उन्नसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में भारत की हिन्दू जनसंख्या इतनी ही थी।
3. लाला जी का यह ग्रन्थ जिस समय लिखा गया, उस समय भारत पर महारानी विक्टोरिया का राज्य था।

अध्याय 1

शिवाजी का जीवनचरित

वंश –विवरण

छत्रपति शिवाजी मातृवंश दोनों ओर से राजपूत थे। पितृपक्ष से वह उस पवित्र वंश में उत्पन्न हुए थे, जिसमें बड़े बड़े शूरवीर उत्पन्न हुए थे, जो वंश बहुत समय तक स्वतन्त्र रहा। जिसकी सन्तान अपनी जाति और देश के लिए अनेक बार लड़ी और जिसने बहुत सी कठिनाइयों को झेलते हुए भी मुसलमानों से सम्बंध नही किया। जो आज तक अपनी इस पवित्रता के कारण समस्त राजपूतों में शिरोमणि है। हमारा यह संकेत उदयपुर के राणावंश[1] से है। मातृपक्ष की ओर से शिवाजी एक ऐसे ही प्राचीन राजवंश के हैं। मुसलमानों के आक्रमणों से पहले दक्षिण में यादव वंश के राजपूत राज करते थे जिनकी राजधानी देवगढ़ में भी जिसे कुछ समय मुहम्मद तुग़लक ने दौलताबाद के नाम से प्रसिद्व किया। शिवाजी के नाना यादवराव जी उसी पूज्य राजघराने के थे। यद्यपि समय के उलट फेर के कारण राज्य की बागडोर हाथ से निकल गई थी, फिर भी यह वंश उस इलाके में प्रतिष्ठित और उच्च्य गिना जाता था। कुछ इलाके उस समय भी इनके हाथ में थे और मुसलमानी राज्य में भी इस वंश के

---

[1]मुसलमानी इतिहास–लेखक ख़फीखां लिखता है कि शिवाजी उदयपुर के राजवंश में से थे, किन्तु उन्होंने अपनी जाति से नीच जाति की स्त्री से सम्बंध कर लिया था जिसके फलस्वरूप एक पुत्र भी उत्पन्न हो चुका था। इसी कारण लज्जित होकर राजपूताना छोड़कर दक्षिण में जा बसे थे और उस लड़के की भी शादी एक मरहठा वंश में कर दी थी। मिस्टर जस्टिस रानाडे ने अपने मरहठा इतिहास में लिखा है कि शिवाजी पितृपक्ष की ओर से उदयपुर के राणा वंश के थे। उदयपुर के शासक सूर्यवंशी क्षत्रिय सीसोदिया वंश के हैं।

राजपूतों को अच्छे अच्छे पद दिये जाते थे।

मराठा वंश में यादवराव का वंश सब से अधिक बली, पराक्रमी, प्रतिष्ठित और जागीरदार था। यादवराव के वंश का एक आदमी निजामशाही बादशाहत में दस हजार का जागीरदार था। उनकेक वंश में सदा देशमुखी चली आती थी।[2] शिवाजी के दादा का नाम 'मालोजी' भोंसले था जो देरोल ग्राम में रहा करता थां मालोजी का विवाह दक्षिण में एक प्रतिष्ठित वंष में हुआ था जो धनवान् और प्रतिष्ठित होने के अतिरिक्त अधिक प्राचीन भी था।

मालोजी भोंसले के साले को बनंगपाल निम्बालकर के नाम से पुकारते हैं। कोई कोई उसे जगपाल के नाम से भी पुकारते थे। जगपाल अपने समय में एक नामी लड़ाकू वीर हो गया है। बीजापुर के राज्य में उसका वंश दूसरे नम्बर का था परन्तु स्वतन्त्रता की अभिलाषा ने जगपाल को स्वतन्त्र लड़ाइयों और लूट मार करने पर प्रस्तुत कर दिया। जगपाल की बहिन मालोजी को व्याही थी, " भोंसले" उनके राजवंश की उपाधि थी। ठीक पता नहीं चलता कि यह भोंसले शब्द किस शब्द का अपभ्रंश रूप है। एक मुसलमान इतिहास लेखक ने लिखा है कि "भोंसले" शब्द 'घोसले' का अपभ्रंश है। चुंकि इनका प्रथम पूर्वज अर्थात् वह वीर जो पहले पहल राजपूताने से पिता के साथ महाराष्ट्र में आया, वर्षो तक जंगलों में भटकता रहा, इस कारण इस का घोंसला वंश हो गया जो बिगड़ कर भोंसले हो गया। परन्तु ग्रान्टडफ़ साहब इसका कुछ और कारण बताते हैं। वे कहते हैं कि बहमनी वंश वालों के राज्य में इस वंश का एक मनुष्य एक पहाड़ी किले पर एक जानवर की कमर में रस्सी बांध कर गया। उससे पहले कोई उस किले पर नहीं चढ़ा था, वह किला बड़ा दुर्गम समझा जाता था– उस दिन से उसका नाम भोंसले पड़ा।

[2]मराठा शासकों द्वारा दिया जाने वाले अधिकारों का सूचक पद।

मालोजी भोंसले का बड़ा लड़का शाह जी भोंसले था। शाह जी का विवाह यादवराव की कन्या जीजीबाई से हुआ था। इस विवाह की भी एक अनोखी कहानी है। मालोजी भोंसले उसक साधारण जागीरदार थे और यादवराव एक बड़े जागीरदार और प्रतिष्ठित व्यक्ति थे, परन्तु इन दोनों वंशों में अपूर्व प्रेम चला आता था। एक बार मालोजी भोंसले अपने बेटे शाह जी के साथ यादवराव के घर गये। उस समय बालिका जीजीबाई अपने पिता यादवराव के पास बैठी थी। दोनों को आते देख कर यादवराव बहुत खुश हुए और हंसते हंसते अपनी छोटी पुत्री जीजीबाई से पुछने लगे कि क्या! तू शाह जी की स्त्री बनना पसन्द करेगी? जो अन्य लोग वहां पर विद्यमान थे उनको सम्बोधन कर यादवराव ने कहा–''यह क्या अच्छी जोड़ी है?'' बस यह बात हुई थी कि मालोजी भोंसले आनन्दित हो कहने लगे कि मित्रों! आप लोग साक्षी है, आज यादवराव ने अपनी कन्या का सम्बन्ध मेरे पुत्र शाह जी से कर दिया–'' जीजीबाई आज से शाह जी की हो गई।'' परन्तु यादवराव तुरन्त वचन से फिर गया और इसी बात पर दोनों में अनबन हो गई। इसके कुछ समय बाद मालोजी भोंसले को स्वप्न में किसी खजाने का हाल मालूम हुआ और वह बड़े धनपति हो गये। सम्पत्ति के मिल जाने पर इनके वंश की प्रतिष्ठा और बढ़ गई और दरबार से भी 5000 का अधिकार मिल गया। अहमदनगर के दरबारियों ने बीच में पड़ कर मालोजी और यादवराज की फिर मित्रता करा दी और अन्त में शाह जी और जीजीबाई का विवाह हो गया।

कहते हैं कि मालोजी भोंसले भवानीदेवी के परमभक्त थे। एक बार देवी ने स्वप्न में मालोजी को दर्शन दिया और कहा कि तेरे वंश में एक प्रतापी राजा होगा जिसमें महादेव जी के समान गुण पाये जायेंगे और वह उन सब दुष्टों का संहार करेगा जो गौ–ब्राह्मणों को सताते और मन्दिर–मूर्तियों को

तोड़ते हैं। उसका राज्य अधिक काल तक रहेगा। उसकी सत्ताईस पीढ़ियों तक लगातार राज्य की बागडोर स्वतन्त्र रहेगी। मैसूर का इतिहास लेखक कर्नल बेल्कसन ने लिखा है कि एक हिन्दू ग्रन्थ में जो सन् 1646 ई. को लिखा है हमने यह भविष्यवाणी देखी कि 'धर्म का नाश हो गया है', उच्च से उच्च वंश नष्ट हो गये हैं परन्तु दुःख दूर होने का समय अब निकट आ गया है जबकि कुमारी कन्याएं प्रसन्न बदन गीत गायेंगी और आकाश से फूलों की वर्षा होगी'। जिस समय यह लिखा गया था एस समय शिवा जी का नाम किसी को मालूम ही न था किन्तु कर्नल साहब ने लिखा है कि कुछ समय के बाद लोगों को मालूम हो गया िकवह भविष्यवाणी शिवाजी के आश्चर्य ककट करने वाले कर्मो ही के लिए थी। ऐसी ऐसी भविष्यवाणियों से प्रकट होता है कि समय शिवाजी के लिए तैयार था और लोग किसी ऐसे वीर बहादुर के अवतार की प्रतीक्षा कर रहे थे जो उनके धर्म को तात्कालिक क्लेश और कष्टों से बचावे।

मालोजी भोंसले के प्राणान्त के बाद उनके पुत्र शाहजी भोंसले को अहमदनगर के दरबार की तरफ से अपने खर्च के लिए जायदाद और अधिकार मिल गये। कुछ समय पश्चात् यह स्पष्ट ज्ञात हो गया कि शाह जी भोंसले यद्यपि मालोजी भोंसले का पुत्र है, तो भी वह समय था जब जहांगीर के सेनाध्यक्ष दक्षिण विजय करने के लिए तुले खड़े थे और अहमदनगर के प्रसिद्व सेनापति 'मलिक' से लड़ रहे थे। उस समय सन् 1620 ई. की लड़ाई में शाह जी ने खूब वीरता दिखाई और कीर्ति के अधिकारी हुए। इस लड़ाई में उनके श्वसुर यादवराव भी उपस्थित थे। यद्यपि 'मलिक' हार गया परन्तु समस्त इतिहास लेखक मानते हैं कि इस हार के उत्तदायी मरहठे न थे। इस लड़ाई में शाहजी भोंसले और यादवराव ने जो कार्य कर दिखाया उससे मुगलों की सेना में

मरहठों की पूरी धाक जम गई और मुगल सेनापति इस प्रबन्ध में लग गया कि येन केन प्रकारेण मरहठों को अपने में मिलावें। कुछ दिनों बाद यादवराव, मलिक अम्बर से बिगड़कर मुगल सेना से मिल गये जिसके फलस्वरूप 15 सवार उनके अधिकार में दिये गये। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि मुगल सम्राट् के प्रतिनिधियों ने जो दक्षिण में लड़ रहे थे सम्राट् की आज्ञानुसार एक मरहठे सरदार की कितनी प्रतिष्ठा की। जो सम्बन्धी उनके साथ आये थे उनको भी बड़े बड़े पद और अधिकार दिये गये, परन्तु शाहजी भोंसले अपने श्वसुर के साथ नहीं आया थां वह अपनी मरहठा सेना लिऐ अपने स्थान पर डटा रहा। सन् 1667 ई. में शाहजहां मुगल राज्य के सिंहासन पर बैठा। शाहजहां की उस सेनापति से जो दक्षिण के मैदान में लड़ रहा था कुछ रंजिश थी। उसने तुरन्त ही खांजहां लोदी को दक्षिण के युद्व से वापस बुला लिया। जब खांजहां लोदी दरबार में आया तो उसे कुछ बेइमानी के लक्षण दिखाई पड़े। वह झट भाग कर दक्षिण चला गया और निजामशाही अहमदनगर राज्य की शरण में रहने लगा। शाहजहां ने इसके पीछे बहुत सी सेना भेजी। परन्तु दक्षिण की समस्त हिन्दू रियासतों ने और शाहजी भोंसले आदि ने खांजहां लोदी को मदद दी, खूब डट कर लड़ाई हुई। फलस्वरूप मुसलमानी सेना को अधिक हानि उठानी पड़ी और विफल मनोरथ ही सेना वापस लौटी। इस पराजय से शाहजहां को इतना क्रोध आया कि स्वयम् एक बड़ी सेना लेकर दक्षिण की ओर चला। अन्त में डट कर युद्व हुआ परन्तु खांजहां हार कर भाग गया। शाहजी भोंसले ने देखा कि जिसके लिए हम मुगलवंश से युद्व कर रहे थे वह भाग निकला तो उन्होंने भी सन्धि कर ली। बादशाह शाहजहां ने शाहजी भोंसले की बड़ी प्रतिष्ठा की और छः हजार का अधिकार देकर पांच हजार सवार का अफसर बना दिया और पहली सम्पत्ति के अतिरिक्त

और बहुत सी सम्पत्ति दी।

इतना होने पर भी शाहजी भोंसले पूर्ववत् निजामशाही राज्य का शुभचिन्तक बना रहा परन्तु जब निजामशाही राज्य के प्रधान फतेहखां ने अपने बादशाह का वध करके शाहजहां से सन्धि करने का विचार किया किन्तू सन्धि के नियमों पर स्थिर न रहा तो शाह जी भोंसले निजामशाही राज्य छोड़कर बीजापुर के दरबार में चला गया। उन दिनों शाहजी भोंसले का दक्षिण में बड़ा जोर था। आदिलशाह बीजापुर बादशाह से शाहजी का मिल जाना बहुत अच्छा हुआ। इस समय फतेहखां ने शांहशाही सेनापति महाबत खां से झगड़ा कर दौलताबाद अर्थात् बीजापुर की राजधानी पर चढ़ाई कर दी। शाहजी भोंसले इसके साथ खूब वीरता से लड़ते रहे परन्तु अन्त में हार गये। बीजापुर वालों ने फतेहखां से सन्धि की बातचीत की जिसमें एक शर्त यह थी कि फतेहखां शाहजी भोंसले को वीरता से युद्व करने के बदले बहुत कुछ पारितोषिक दें। चतुर फतेहखां ने बीजापुर वालों से सन्धि करते ही मुगल सेना पर आग बरसाना आरम्भ कर दिया जिसको देख कर महाबतखां को बहुत क्रोध आया और उसने फतेहखां को गिरफ्तार करने का प्रबन्ध किया । जब फतेहखां हाथ में आ गया तब महाबतखां ने ठानी कि शाहजी भोंसले को जीतना चाहिए क्योंकि तभी बीजापुर व अहमदनगर पूर्ण रूप से अपने हाथ में आ जायेंगे। परन्तु मुसलमानी सेनापति ने सब से पहले यह काम किया कि शाहजी भोंसले की स्त्री और पुत्र को जो नीरापुर के निकट ठहरे हुए थे गिरफ्तार करने का प्रयत्न किया। एक मुसलमान सेनानायक ने धोखा देकर उनको गिरफ्तार भी किया परन्तु जब मराठा सरदारों ने यह समाचार सुना तो जमानत देकर स्त्री को छुड़ा कर गोदवाना के किले में पहुंचा दिया। एक नई चाल शाहजी भोंसले ने इसी बीच और चली। फतेहखां वजीर अहमदनगर का उस समय गिरफ्तार ही था। फतेहखां ने जिस बादशाह को तख़्त

पर बैठाया था उसे मुगल सेना ने पकड़ कर ग्वालियर के किले में कैद कर दिया। शाहजी भोंसले ने तुरन्त अहमदनगर के शाही खानदान के एक कम अवस्था वाले बालक को सिंहासन पर बिठा दिया और आप उसका प्रबन्धकर्ता बन बैठा। बीजापुर के राज्य में इस समय दो बलशाली सरदार थे जो मुरारपन्त और अब्दुल्ला खां के नामों से प्रसिद्व थे और गुप्त रूप से शाहजी भोंसले के सहायक थे। महाबतखां और उसका बेटा दोनों इस लड़ाई में पूर्ण रूप से हारे। जब शाहजहां ने यह चालबाजी सुनी तो क्रोध से जल उठा। फलस्वरूप उसने एक बड़ी सेना के साथ औरंगजेब को जो उस समय नवयुवक था दक्षिण की ओर रवाना किया। साथ में दो और सेनापति 'जनरल खांजमां वा ख़ानदौरा नियत किये गये परन्तु वे शाहजी भोंसले के सम्मुख युद्व में न ठहर सके। अन्त में शाहजहां ने शायस्ता खां और ख़ानदौरां नियत किये गये परन्तु वे शाहजी भोंसले के सम्मुख न ठहर सके। अन्त में शाहजहां ने शायस्ता खां और अलीवर्दी खां को उनकी सहायता के लिए भेजां इन चारों ने मिलकर फिर शाहजी भोंसले से लड़ाई छेड़ दी। पूरे दो वर्ष लड़ाई होती रही परन्तु शाहजी इनके हाथ न आये। लाचार होकर शाहजहां ने बीजापुर के बादशाह के साथ सन्धि करने का प्रस्ताव किया अन्त में शाहजी भोंसले ने मुकाबला छोड़ दिया।

शाहजी भोंसले उस समय अपनी वीरता और चतुराई के कारण पूर्ण से प्रसिद्व हो चुका था। बीजापुर के बादशाह ने ऐसे मनुष्य को अपनी सहायता के लिए रखना बहुत अच्छा समझा और पूना का प्रान्त उसकी जागीर में मिला कर दे दिया। कुछ समय बाद कोन्हार, बंगलोर, रोस, कर्टा, बालापुर और सेरा कुछ समय बाद बरार प्रान्त में 22 देहात की देशमुखी1 भी उनको दे दी गई। इस प्रकार और बहुत से इलाके शाहजी भोंसले को थोड़े ही समय में प्राप्त हो गये।

1. देशमुखी एक प्रकार का हक कहलाता है जिससे पैदावार का कुछ हिस्सा 'देशमुख' को मिला करता है।

अध्याय 2

शिवाजी का जन्म और बाल्यकाल

सन् 1616 ई. में शाहजी भोंसले के घर शिवनेरी नाम के किले में शिवाजी का जन्म हुआ। जिस समय शिवाजी का जन्म हुआ था एस समय शाहजी भोंसले लड़ाई के मैदान में डटे हुए थे। सब से विचित्र बात यह थी कि एक सेना की रतफ से शाहजी थे तो मुकाबले में दूसरी तरफ उनके श्वसुर यादवराव लड़ रहे थे जिसका फल यह हुआ कि थोड़े ही समय में शिवाजी के पिता और माता में मनामालिन्य बढ़ गया। फल स्वरूप सन् 1630 ई. में शाहजी ने दूसरी शादी कर ली जिससे जीजीबाई मुसलमानों के कब्जे में फंस गई। वह अपने पिता के एक सम्बन्धी के साथ थी। शिवाजी पर कोई आपत्ति न आ सकती थी क्योंकि इस उसने अलग छिपा रखा था।

छः वर्ष का बालक मुसलमान आक्रमणकारियों के हाथ से बचता और भागता फिरता है। जब उसी अवस्था में आजकल के बच्चे गलियों और बाजारों में खेलते फिरतें हैं। माताएं इस बात की चिन्ता भी नहीं करती कि उनका बालक कहां खेल रहा है? शिवाजी की माता अपने बच्चे को छिपाती थी और बड़ी सावधानी से उसको ऐसे स्थान पर रखती थी जहां से वह दुश्मनों के हाथ से बचा रहे। सन् 1636 ई. तक शिवाजी को अपने पिता का दर्शन प्राप्त नहीं हुआ था। अन्त में धीरे धीरे शिवाजी के पिता माता में पुनः प्रेम हो गया। शाहजी ने शिवा की शादी के पिता माता में पुनः प्रेम हो गया। शाहजी ने शिवा की शादी कर दी और कुछ दिन बाद फिर कर्नाटक की लड़ाई को रवाना हुए। शिवाजी माता के साथ पूना में विश्राम लेते रहे।

शिवाजी के बाल्यकाल की एक कहानी इस प्रकार प्रसिद्व है जिससे उनके आगामी पवित्र जीवन का वृत्तान्त

भली प्रकार मालूम होता है। कहते हैं कि जब शाहजी भोंसले बीजापुर दरबार में थे तब एक दिन 'मुरार पन्त' ने शिवाजी से कहा '' चलो आज तुमको दरबार में ले चलें और बादशाह को सलाम करायें।'' होनहार बालक ने इसमें प्रसन्नता के बदले घृणा प्रकट की और कहा कि हम हिन्दू हैं और बादशाह यवन है, महायवन है, महानीच है। हम गौ और ब्रह्मण के सेवक हैं और वह उनका शत्रु है। हमार और उसका मेल नहीं हो सकता। मैं ऐसे मनुष्य से सलाम करना नहीं चाहता जो हमारे धर्म का शत्रु है। उसे तो मैं छूना भी नहीं चाहता। मैं ऐसे मनुष्य को कभी बादशाह नहीं मान सकता और न कभी उसका अदब कर सकता हूं। सलाम तो एक तरफ रहा, मेरे मन में यह बात आती है कि उसका गला काट डालूं।

जिस समय मुरार पन्त ने बच्चे शिवाजी की यह भोली बात सुनी तो आश्चर्य करने लगा और उसके माता पिता को समस्त समाचार सुनाया। माता पिता दोनों ने बच्चे को समझाया कि यह समय ऐसी बातें करने का नहीं है। स समय मुसलमानों का आधिपत्य है। उनके बादशाह को सलाम करना हमारा फर्ज है। इस प्रकार समझा बुझा कर शिवाजी को दरबाार में ले गये परन्तु वहां जाकर शिवाजी ने बादशाह को सलाम नहीं किया। शाहजी और मुरारपन्त ने यह कह कर बात टाल दी कि अभी 'बच्चा' है दरबार का नियम नहीं जानता। शिवाजी जब दरबार से घर वापस आया तो उसने स्नान किया और नवीन वस्त्र बदले।

शाहजी को अपने नौकरों में सिर्फ दो नौकरों पर पूरा विश्वास था। उनमें से एक का नाम दादा जी कोंड़देव था। दादाजी कोंडदेव के अधीन पूना का प्रबन्ध था जहां पर शिवाजी तथा उनकी माता रहा करती थी। दादाजी कोंड़देव एक बड़ा बुद्विमान और चतुर आदमी था। इसी ने शिवाजी को उत्तमोत्तम शिक्षा दी थी। जो उसका कर्त्तव्य था उस सब को उसने बड़ी बुद्विमानी से पूर्ण किया। जागीर का प्रबन्ध इस

उत्तमता से किया कि खेती में खूब उन्नति होने लगी और इलाके की समस्त पहाड़ी आबादी को, जिसको मावली के नाम से पुकारा जाता था अपना सेवक बना लिया। प्रजा बहादुर और योद्घा किन्तु निर्धन थी। उसने कई वर्ष तक इन लोगों से मालगुजारी नहीं ली। प्रजा के बहुत से आदमियों को अपने यहां नौकर रखा और उनके पालन पोषण का प्रबन्ध किया। दादाजी कोंड़देव की यह दूरदर्शिता शिवाजी के काम आई। जहां उसने जागीर का प्रबन्ध उत्तम किया था वहां शिवाजी की शिक्षा की भी पूरा ध्यान रखा था। इस समय मरहठों में पढ़ने लिखने की इतनी चर्चा नहीं थी बल्कि युद्व–विद्या को ही प्रधान कर्त्तव्य समझाा जाता था। शिवाजी बाल्यकाल में घोड़े की सवारी में अद्वितीय तथा शस्त्रविद्या में अनुपम हो गये थे। लक्ष्य लगाने, भाला चलाने और तलवारों के प्रयोग करने में भी सब जगह प्रसिद्व हो गये थे। उन समस्त गुप्त रीतियों और हथकण्डों को भी दादा जी कोंड़देव की कृपा से जान लिया जो उन जैसे वीरों के लिए आवश्यक था। रामायण और महाभारत की कथा में उनको बड़ी भक्ति थी। यह भक्ति और प्रेम यहां तक बढ़ गये थे कि बड़ी अवस्था होने पर अपने प्राणों को संकट में डाल कर भी जहां कथा होती थी वहां पहुंच जाते थे। थोड़ी ही अवस्था में मुसलमानों के अत्याचार को देखकर उनसे उन्हें इतनी घृणा हो गई थी जो समस्त जीवन उनके हृदय में बनी रही। शिवाजी को अपनी युवावस्था में मावलियों से मिलने का अवसर बहुत मिला। उनसे मिलकर उनके गुणों को अच्छी प्रकार पहिचान लिया और आरम्भ ही से ऐसी मित्रता की कि अन्त तक वे सब शिवाजी के सहायक बने रहे।

जागीर के प्रबन्ध में भी दादाजी कोंड़देव ने शिवाजी को पूर्ण शिक्षित किया था जिसके कारण वे सर्वप्रिय हो रहे थे। शिवाजी के हृदय में स्वतन्त्रता की अभिलाषा पहले ही से थी जो अपना रंग दिखाने लगी। कभी कभी शिवाजी दिन भर गायब रहते थे और ऐसे लोगों से मिलते जुलते रहते थे जो

किसी राज्य के अधीन नहीं थे और न किसी कानून के पाबन्द थे। रात दिन जंगलों में घूमते फिरते। यहां तक कि कुछ लोग यह ख्याल करने लगे कि शिवाजी डाकुओं के साथ मिल गये। ये सब शिकायतें दादाजी कोंड़देव के पास तक पहुंची। इसकी रोक के वास्ते जागीर का बहुत बड़ा हिस्सा शिवाजी को सौंप दिया गया। इससे इतना प्रभाव पड़ा कि दिन भर वह कहीं बाहर न जाने लगे परन्तु जो चीज उनकी प्रकृति में मिल गई हो वह कैसे दूर की जा सकती थी? शाहजी की जागीर में कोई दुर्ग नहीं था इसलिए आत्मरक्षा और धर्मरक्षा के लिए किसी दुर्ग का होना अत्यन्त आवश्यक था। शिवाजी के मस्तिष्क में यह विचार रह रह कर जोश मारने लगा कि किसी तरह कोई किला हाथ आवे। हम पहले लिख चुके हैं कि मावली लोगों के चित्त को तो शिवाजी पहले ही वशीभूत कर चुके थे और देश के दुर्गम मार्ग शिकार खेलने के समय ही देख चुके थे। अतएव किसी किले को प्राप्त करना शिवाजी के लिए कोई कठिन काम न था। वह अपने मन की तरंग में सब कुछ कर सकते थे।

पूना में पश्चिमी भाग में करीब 20 मील की दूरी पर 'तोरण' नामक पहाड़ी किला था। इस किले का मार्ग बहुत कठिन और दुर्गम था। शिवाजी ने अपने मावली साथियों की सहायता से तोरण किले के अध्यक्ष से परिचय प्राप्त किया और उसको किसी प्रकार इस बात पर प्रसन्न कर लिया कि वह तोरण किला उनको शिवाजी दे देवे। शिवाजी के जीवन का सबसे प्रथम कार्य जो बिना युद्व किये ही समाप्त हुआ, वह तोरण के दुर्ग को प्राप्त करना था जो सन् 1636 ई. में पूर्ण हुआ। उस समय जब शिवाजी की अवस्था केवल 19 वर्ष की थी। किला प्राप्त करने के पश्चात् उन्होंने अपना एक वकील बीजापुर भेजा ताकि वह जाकर बादशाह पर यह प्रकट करे कि शिवाजी ने यह काम सिर्फ बादशाही सेवा को सम्मुख रख कर ही किया है। इसने वकीलों द्वारा यह सन्देश

भिजवाया कि ऐसे में शिवाजी जैसे वीर का रहना ही अधिक लाभप्रद होगा। इसके साथ ही पहले के जागीरदारों की अपेक्षा इसने दुगना कर देना भी स्वीकार किया। उधर शिवाजी के वकील इस निवेदन को प्रकट करने के ढंग निकाल रहे थे इधर शिवाजी अपने किले को सुदृढ़ बनाने और सेना बढ़ाने में लगे हुए थे। दरबार वालों ने इस निवेदन के उत्तर में जान बूझ कर देरी की, परन्तू यह विलम्ब शिवाजी ने शस्त्र खरीद हुए एक खजाना हाथ लग गया जिससे शिवाजी ने शस्त्र खरीद कर एक और नया किला बनाने की नींव डाली। तोरण किले से तीन मील की दूरी पर 'महोविदा' की पहाड़ी पर उसने एक और किला तैयार कर लिया जिसका नाम राजगढ़ रखा। यह किला सदा शिवाजी के ही अधीन रहा।

जब इस समस्त कार्यवाही का समाचार बीजापर पहुंचा तब उन्होंने शिवाजी के पास इस अभिप्राय का एक परवाना लिख भेजा जिससे कि अपनी इन चालबाजियों से हाथ खींच ले और साथ ही शाहजी के पास भी पत्र लिख भेजा कि वह अपने पुत्र शिवाजी को समझा देवे। पत्रोत्तर में शाहजी ने बादशाह बीजापुर को पत्र लिख दिया कि मेरे बेटे ने बिना मेरी सम्मति लिये यह काम किया है। मैं और मेरे सम्बन्धी दरबार के शुभचिन्तक हैं अतएव बहुत सम्भव है कि शिवाजी ने जो कुछ किया है वह जागीर की उन्नति और रक्षा ही के निमित्त किया हो।

इधर शाहजी ने दादाजी कोंड़देव के पास पत्र लिखकर अप्रसन्नता प्रकट की और कहला भेजा कि वे भविष्य में शिवाजी को ऐसा कार्य करने से रोकें। इस समाचार के सुनते ही शिवाजी को बड़ी चिन्ता हुई। एक ओर थी पिता की आज्ञा और दूसरी ओर थी धर्म और राज्य प्राप्त करने की प्रबल इच्छा। उस समय शिवाजी के हृदय में तरह तरह के विचार उठ रहे थे अद्भूत दशा में उसका चित्त गोते लगा रहा था।

अन्त में उसने अपनी प्यारी स्त्री से सम्मति ली। स्त्री ने सनातन रीत्यनुसार पहले तो यह कहा कि स्त्रियों की सम्मति ठीक नहीं होती कारण कि उनमें बुद्धि कम होती है। परन्तू यदि आप मेरी सम्मति लेना ठीक समझते हैं तब तो गौ– ब्राह्मण तथा धर्म रक्षा करना अधिक श्रेयस्कर है, चाहे इनके करने में पिता की आज्ञा का उल्लघंन ही क्यों न करना पड़े। स्त्री ने यह भी कहा कि शाहजी यहां से दूर हैं, उनको क्या मालूम किइस इलाके में कौन कौन सी विपत्ति पड़ रही है। यदि वे यहां होते तो कभी ऐसा न करते वरना आपको और अधिक सहायता देते।

शिवाजी की इच्छा तो प्रबल थी ही, साथ ही स्त्री की सम्मति ने अग्नि में घी की आहुति दे दी। फिर क्या था? शिवाजी के विचार और भी दृढ़ हो गये। यद्यपि दादाजी ने भी आदेशानुसार उसे समझाया था क्योंकि दादाजी शिवाजी के रक्षक थे। तब भी कभी कभी दादाजी शिवाजी को ऐसे उत्तर दे दिया करते थे जिससे वह सदैव प्रसन्न रहे। शिवाजी के हृदय में धर्मरक्षा की ज्वलन्त अग्नि धधक रही थी। दादाजी भी समझ गये कि शिवाजी के विचार अटल हैं। अतएव चुप रह जाने के अतिरिक्त दादाजी ने और कोई कार्यवाही नहीं की। कुछ दिनों के उपरान्त दादा कोंड़देव का स्वर्गवास हो गया।

मरने के कुछ दिन पहले दादाजी ने शिवाजी को अपने पास बुलाया और बजाय इसके कि वह शिवाजी को अपने काम से रोकते यह उपदेश दिया– बेटा! धीरता से स्वतंत्र होने की चेष्टा करना। धर्म, गो–ब्राह्मण और प्रजा की रक्षा करना। हिन्दुओं के मन्दिरों को नष्ट भ्रष्ट होने से बचाना और अपना नाम जगत् में फैलाना। वृद्व शिक्षक के इस उपदेश ने वीर शिवाजी के हृदय में नवीन उत्साह का संचार कर दिया। बस फिर क्या था, खुलेआम कार्य आरम्भ कर दिया गया। जिसका अधिक भय था उसने भी मरते मरते शिवाजी को कर्तव्य पूरा

करने की आज्ञा दे दी। दादाजी की आज्ञा उसके लिए ईश्वर की आज्ञा थी जिसका पूरा करना शिवाजी ने अपना परम कर्तव्य समझा।

दादाजी के मरने के बाद शिवाजी ने अपने पिता की तरफ से जागीर का प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया जब शिवाजी के पिता ने शेष मालगुजारी का हिसाब मांगा तो उसने उत्तर में लिख भेजा ि कइस निर्धन इलाके की आमदनी इसके व्यय के ही लिए काफी होती है, बचने बचाने की कोई गुंजाइश नहीं है। सारी जागीर में केवल दो आदमी ऐसे थे जो शिवाजी से सहमत नहीं थे। इसलिए यह आवश्यक था कि वे या तो अपने पक्ष में हो जायें या एकदम पृथक हो जायें उन विपक्षियों में से एक का नाम फ़िरंगाजी नरसला था और दूसरे का नाम सम्भाजी मोहिते था। पहला 'चाकन' नामक जिले का अध्यक्ष था और दूसरा शाहजी की दूसरी स्त्री शिवाजी की सौतेली मां का भाई था जो एक सूबेदार था। शिवाजी के दूतों ने फिरंगाजी को तो अपने पक्ष में कर लिया परन्तु सम्भाजी मोहिते रह गया। शिवाजी इसी चिन्ता ही में था कि 'गोन्दवाने' का किला भी उसके हाथ आ गया। किले के रक्षक ने जो मुसलमान था, एक बड़ी भारी रकम रिश्वत में लेकर किला शिवाजी को सौंप दिया। यह किला और किलों से बड़ा और उचित स्थान पर था जिसका नाम शिवाजी ने ' सिंहगढ़' रक्खा और इसी नाम से वह अब तक प्रसिद्व है।

सम्भाजी मोहिते के पास तीन सौ चुने हुए सवार थे और सूबे में उसका अधिकार था। शिवाजी के कई बार पत्र लिखने पर भी वह चिकनी चुपड़ी बातें करता रहा परन्तु शाह जी की आज्ञा के बिना उसने हिसाब चुकाने के लिए स्पष्ट इन्कार कर दिया। इस बात चिढ़ कर शिवाजी ने अपने मावली सिपाहियों को साथ लेकर रात के समय चढ़ाई कर दी और सम्भाजी मोहिते को उनके साथियों समेत कैद कर लिया।

मेहिते को उन्होंने कर्नाटक भेज दिया और शेष आदमियों में से जिन्होंने नौकरी स्वीकार कर ली उन्हें अपने पास रख लिया और दूसरों को कर्नाटक अपने पिता के पास रवाना कर दिया। इस इलाके में कर्नाटक और पुरन्दर ही दो किले थे जो शाही अफसरों के अधिकार में थे। सदा से शिवाजी की उन पर दृष्टि लगी थी। उनमें से एक किला तो मुसलमान किलेदार को रिश्वत देकर ले लिया था और दूसरे किले की वह ताक में ही था। संयोग से इसी समय दूसरा किलेदार स्वर्गलोक चला गया।

मृत किलेदार के तीन पुत्र थे जिनमें से बड़ा बेटा बिना शाही आज्ञा प्राप्त किये ही अपने पिता की गद्दी पर बैठ गया और किलेदार बन बैठा। दोनों छोटे बेटों ने अपनी मदद के लिए शिवाजी की शरण ली । इस बहाने शिवाजी ने अपनी बड़ी सेना साथ ले पुरन्दर किले के नीचे डेरा जमाया। सब भाइयों ने शिवाजी को उनके कई सरदारों के साथ किले में रहे और मौका पाकर रात में बड़े भाई को कैद कर लिया और शेष दो भाइयों और किला निवासियों को अपनी तरफ मिला लिया। इस कुटनीति से किले को अपने वश में करके बदले में बहुत सी जागीर उन तीनों भाइयों को दे दी और तीनों को अपनी सेवा में रख लिया।

निदान उसने बहुत ही थोड़े समय में बिना किसी प्रकार की लड़ाई के समस्त जागीर अपने हाथ में करली जो इस समय महल और कबरें बनाने के धुन में था। और इसका सेनापति शाहजी कर्नाटक की लड़ाई में था और घूम घूम कर दौरा कर रहा था।

अध्याय 3

शाहजी का कैद होना और छुटकारा

21 वर्ष की अवस्था तक जो कार्य शिवाजी ने किये हैं वह ऊपर लिखे जा चुके हैं। स्वतन्त्रता और राजपाट की प्रबल अभिलाषा ने शिवाजी को धन जमा करने की सुबुद्दि दी। वह नवीन युद्दों के लिए नई नई सामग्रियां तैयार कराने लगे। एक ओर तो सेना इकट्ठी करके उसको सजाना प्रारम्भ किया, दूसरी तरफ अपने दूत समस्त इलाकों में भ्रमण करने के लिए भेज दिये, ताकि वे हिन्दू प्रजा में मुसलमानों के प्रति घृणा का भाव उत्पन्न करें।

शिवाजी की इस स्वतन्त्र कार्यवाही पर यदि किसी को आश्चर्य हो तो वह शीध्र इस घटना से दूर हो गया होगा। जो इस बात का पूरा सबूत है कि शिवाजी अपने आप को किसी बादशाह के अधीन न समझता था। इसीलिए वह किसी से नहीं दबता था। जब उसको यह समाचार मिला कि मुल्ला अहमद (कल्याण का अध्यक्ष) ने एक बहुत बड़ा खजाना बिहार की ओर भेजा है त बवह 200 सवार लेकर चल पड़ा और उसे लूट लिया। जिस समय इस लॅअ की ख़बर बीजापुर पहुंची उसी समय यह ख़बर भी मिली कि शिवाजी ने निम्नलिखित किलों पर कब्जा कर लिया। कंगोरी–टोगटकोन–भोरप–कादरी लोहगढ़ और राममोची। इनके अतिरिक्त शिवाजी के आदमियों ने ताला, गोशाला और 'राइरी' नाम के ग्रामों पर भी अपना अधिकार कर लिया और कोंकण केक इलाके के बहुत से शहरों को लूट कर राजगढ़ में बहुत सी सम्पत्ति एकत्रित कर ली है।

शिवाजी के साथ साथ दादाजी कोंड़देव ने जिन लड़कों को शिक्षा दी थी उनमें से एक का नाम आवाजी

सेमदेव था जो केवल वीर ही नहीं बल्कि धीर, चतुर और तीक्ष्ण बुद्धि का भी था। इसी ने 'कल्याण' पर चढ़ाई करके मुल्ला अहमद को कैद किया था। बस इतना होते ही इस इलाके में जो किले थे सब सोमदेव के हाथ आ गये। इस बात पर शिवाजी बहुत खुश हुआ और 'कल्याण' पहुंच कर उसने बहुत सा धन और माल 'सोमदेव' को दिया और उस इलाके का सूबेदार बना दिया। वह बड़ी चुतरता के साथ इलाके का प्रबन्ध करने लगा। मालगुजारी का प्रबन्ध देश की पुरानी रीति पर करना शुरू किया। उन जागीरों को जो हिन्दुओं के मन्दिरों और तीर्थ स्थानों की थी और जिन्हें मुसलमानों ने छीन लिया था, हिन्दुओं को वापस करा दिया। इनके सिवाय 'गोशाला' और 'राइरी' के पास किले बनवाने शुरू कर दिये। दो किले बने एक 'भर्दारी' और दूसरा लंगाना'। मुल्ला अहमद से (जिसको आवाजी सोमदेव ने कैद किया था) शिवाजी बड़ी प्रतिष्ठा के साथ मिला और उसको कैद से छुड़ा दिया। वह वहां से छूट कर सीधा दरबार में जा पहुंचा और वहां उसने शिवाजी की शक्ति का वृत्तान्त सबको सुनाया, जिसे सुन कर आदिलशाह को बड़ी चिन्ता हुई। उसके मन में यह सन्देह था कि यह सब कार्यवाही शाहजी की साजिश से हो रही है, और चूंकि कर्नाटक में शाहजी बड़े जोर पर थे, बादशाह ने अभी तक शिवाजी के साथ कोई कार्यवाही नहीं की। बादशाह ने उसे एक चिट्ठी लिख भेजी कि जिस तरह हो सके शाहजी को गिरफ्तार कर ले। बाजी घारपुरे ने शाहजी को निमन्त्रण देकर अपने घर पर बुलया और धोखे से कैद कर दरबार में भिजवा दिया। जब शाहजी को उसकी इन करतूतों से रोको नही ंतो तुम्हारी कुशलता नहीं। शाहजी ने शिवाजी के पास पत्र भेज कर बहुतेरा चाहा कि वह शान्त हो परन्तू शिवाजी ने पिता के पत्र का कोई उत्तर न दिया। उधर शाहजी ने बादशाह से बहुतेरा कहा कि शिवाजी से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। वह

बादशाह का बागी है और मुझ से बग़ावत ठानता है। शाहजी की इन बातों पर बादशाह ने कुछ भी ध्यान न दिया और क्रोध में आकर आज्ञा दे दी कि शीघ्र ही शाहजी को किसी अंधेरे गढ़े में कैद कर दिया जाय और वहां एक छोटा सूराख छोड़ कर कोई द्वार भी न खुला रहे। साथ ही यह भी धमकी दी कि यदि शिवाजी शीघ्र ही अराजकता फैलाना बन्द न करेगा तो वह सूराख (छेद) भी बन्द कर दिया जायेगा और शाहजी को जिन्दा ही द़फन कर दिया जायेगा।

जब शिवाजी को पिता शाहजी के कैद होने का समाचार मिला तो बड़ी चिन्ता उपस्थित हुई। एक ओर तो पिता का जीवन संकट में और दूसरी और वर्षो की कड़ी मेहनत की कमाई कीर्ति और सम्पत्ति नष्ट होती थी और स्वतन्त्रता की आशा लता, जिसमें फल आने ही वाला था, सूखी जाती थी। शिवाजी इसी उधेड़ बुन में था कि बुद्विमती स्त्री ने समझााया कि क्षमा–प्रार्थना के अतिरिक्त स्वतन्त्रता से जो कार्यवाही की जायेगी वह शाहजी के लिए अधिक लाभदायक होगी। शिवाजी ने इस समय तक मुगलों के राज्य में हाथ नहीं डाला था इसलिए दूरदर्शिता से लाभ उठाने के लिए शाहजहां से पत्र व्यवहार शुरू किया। जिसका फल यह हुआ कि शाहजहां ने आदिलशाह को शाहजी के अपराधों को क्षमा कर देने के लिए बाध्य किया और शिवाजी को पांच हजारी का पद देना स्वीकार किया। शाहजहां की कृपा और मुरार पन्त के प्रयत्न से शाहजी कैद से छूट गये और चार वर्ष तक दरबार में रहे।

शिवाजी की गिरफ्तारी का प्रयन्त

जब तक शिवाजी के पिता शाहजी दरबार में रहे शिवाजी ने अपनी कार्यवाही शिथिल रखी। बीजापुर के बादशाह ने कोई कार्यवाही शिवाजी के विरूद्व इस भय से नहीं की कि कहीं समस्त जीता हुआ राज्य दिल्ली के बादशाह को न सौंप दे तो भी बीजापुर का बादशाह शिवाजी की तरफ से

बेसुध नहीं था। इस बात की गुप्त चेष्टा हो रही थी कि किसी प्रकार शिवाजी को कैद किया जाय। एक नीच प्रकृति का हिन्दू 'बाजी शामजी' इस काम को पूरा करने के लिए तत्पर हुआ और जिस इलाके में शिवाजी रहता था वहां ताक में रहने लगा। शिवाजी को इसकी ख़बर लग गई। उसने स्वयं 'बाजी' और उसके साथियों पर आक्रमण करके जंगल में खदेड़ दिया। जावली के राजा चन्द्रराव ने इस विश्वासघाती को अपने राज्य में होकर जाने दिया था।

शिवाजी ने भरपूर कोशिश की कि राजा को इस बात पर राजी करें कि मुसलमानों के विरूद्व अपने देश को स्वतन्त्र करने के लिए तैयार हो परन्तु जावली के राजा चन्द्रराव ने शिवाजी की कोई बात न सुनी बल्कि विरूद्व में उस पार्टी की पदद की जो शिवाजी को कैद करने के लिए जा रही थी। शिवाजी के मित्रों को इस अनुचित कार्यवाही पर बड़ा क्रोध आया और वे बदला लेने की फिक्र में घूमने लगे। इस काम में उन लोगों ने कुटनीति से काम लेना उचित ठहराया। राघोबल्लाल अत्रे और 'सम्भाजी कावजी' मित्र भाव से इसके राज्य में जा घुसे और समय पाकर चन्द्रराव का वध कर दिया। बाहर से उसके साथियों ने चारों तरफ से 'जावली' को घेर लिया। बड़ी भारी लड़ाई के बाद मन्त्री हिम्मतराव भी मारा गया। लड़के कैद कर लिये गये और 'जावली' में राघो बल्लाल का अधिकार हो गया। समस्त मरहठा इतिहास लेखक एकमत होकर लिखते हैं कि राघोबल्लाल आदि ने यह काम शिवाजी को बिना सूचना दिये किया था इसलिए यह दग़ाबाजी शिवाजी के मत्थे नहीं मढ़ी जा सकती है। राजा चन्द्राराव का राज्य शिवाजी के हाथ आ जाने से उनकी शक्ति और ज्यादा बढ़ गई और उन्होंने 'खेरा' पर भी अधिकार कर लिया। खेरा की लड़ाई में 'बन्दल देशमुख ने' जो आक्रमण के समय किले में था, खूब वीरता से मुकाबला किया और उसके आदमियों ने तब तक अधीनता का नाम भी नहीं लिया था जब

तक कि 'बन्दल' लड़ता हुआ मारा न गया। अन्त में किला शिवाजी के हाथ आया और मुकाबला करने वालों में से देशमुख बाजी बड़े सम्मान से मिला। शिवाजी ने उसको उसके पिता के सम्पूर्ण अधिकार दे दिये और उसे अपनी अधीनता में रख लिया और एक पैदल सेना की बड़ी संख्या उसको दी गई जिसे पाकर उसने अपनी बाकी आयु बड़ी भक्ति के साथ शिवाजी की सेवा में व्यतीत की।

'नीर' अथवा क्रिश्ना (कृष्णा) नदी के किनारे पर जो इलाका शिवाजी का था उसकी रक्षा में नदी के उद्‌गम पर किला बनाने का काम आरम्भ कर दिया। इस किले का नाम प्रतापगढ़ रखा गया। निदान इस प्रकार अपनी सेना बढ़ाकर और राज्य विस्तार करके शिवार्जीी ने बीजापुर से अधिक शक्ति वाली रियासत को हानि पहुंचाने की मन में ठानी।

www.hindustanbooks.com

अध्याय 4

मुगलवंश के विरूद्ध शिवाजी की कार्यवाही का आरम्भ

शिवाजी की नवीन कार्यवाही का वृत्तान्त सुनाने के पहले इतिहास की मर्यादा को स्थिर रखने के लिए आवश्यक है कि संक्षेप में उस चालबाजी का भी जिक्र करें जिसके कारण औरंगजेब हिन्दुस्तान के इतिहास में शतरंजी चालें चल कर पैंतरे बदल रहा था। यहां तक कि अपने पिता बादशाह शाहजहां को हराकर उसने बाजी मार ली थी। प्रायः दिल्ली के समस्त बादशाह दक्षिण की मुसलमानी बादशाहतों को हड़प करने की फिक्र में रहा करते थे क्योंकि दिल्ली की बादशाहत स्थिर रखने के लिए यह आवश्यक था कि गोलकुण्डा और बीजापुर के बादशाह सदैव कर देते रहें। शाहजहां ने भी इनके विरूद्ध कई बार लड़ाइयां की थी और कुछ हानि पहुंचाई थी। कुछ दिन तो यह राज्य एकत्रित होकर मुगल राज्य के सामने डटे रहे किन्तु उनके दुर्भाग्य से दूसरी बार औरंगजेब को सदैव इस बात का ध्यान रहता था कि इन दोनों रियासतों को हराकर मुगल राज्य के सूबे कायम कर दिये जायें। रियासतों को हराकर मुगल राज्य के सूबे कायम कर दिये जायें। इन दोनों राज्यों में हिन्दुओं का अधिक जोर था । हिन्दू पदाधिकारियों का बड़ा सम्मान होता था। गोलकुण्डा का बादशाह इस समय कुतुबशाह था और मीर जुमला जो हिन्दुस्तान में एक प्रसिद्व मनुष्य हुआ है, उसका प्रधानमंत्री था। मीरजुमला के पुत्र मुहम्मद अमीन से कुछ अपराध हो गया था और बादशाह ने उसको दण्ड देने की ठानी थी। मीरजुमला को यह बुरा मालूम हुआ और उसने शाहजहां के पास इस बात की शिकायत की। औरंगजेब ने भी शाहजहां को खूब पट्टी पढ़ाई क्योंकि वह लड़ाई के लिए कोई बहाना ढूंढ़ रहा था। इसका फल यह हुआ कि शाहजहां ने क्रोध में आकर एक बड़ी चिट्ठी लिखी। कुतुबशाह को यह बात बड़ी बुरी लगी। उसने तुरन्त अमीन को कैद कर लिया और मीरजुमला की समस्त सम्पत्ति जब्त कर ली। बस फिर क्या था, औरंगजेब को मनमाना अवसर मिल गया और उसने तत्काल लड़ाई की ठान ली। औरंगजेब की लड़ाई में कुछ काम धोखेबाजी से लिया जाता था। इस अवसर पर भी उसने अपने बड़े बेटे मुहम्मद को बहुत सेना देकर गोलकुण्डा की तरफ रवाना किया किन्तु कुतुबशाह को यह सूचना दी कि 'शाहजादा' शादी करने के लिए अपने चचा बंगाल के सूबेदार के पास जाता है। वह बेचारा इस बेइमानी को न समझ सका। कुतुबशाह को इन बातों का तभी पता लगा जब शाहजादा मुहम्मद सुलतान उसके द्वार पर जा पहुंचा। विवश होकर कुतुबशाह ने अत्यन्त दीन भाव से सन्धि कर ली और एक करोड़ रूपया वार्षिक देना स्वीकार कर लिया। मीरजुमला दिल्ली दरबार में बुला लिया गया और इसे मन्त्री का पद दिया गया। इस बीच में मुहम्मद आदिलशाह (बीजापुर का बादशाह) ता. 9 नवम्बर 1656 ई. को मर गया। दाराशिकोह के द्वारा इस बादशाह का शाहजहां से परिचय हुआ था। इस कारण औरंगजेब इसको नुकसान पहुंचाना नहीं चाहता था।

इसके मरते ही इसका बड़ा बेटा आदिलशाह तख़्त पर बैठ गया और इसने दिल्ली के बादशाह से किसी किस्म की बातचीत न की।

जब मुगलों को यह बात मालूम हुई तो वे आपे से बाहर हो गये और उन्होंने यह बहाना बनाया कि अली आदिलशाह बादशाह बीजापुर का बेटा नहीं है और इस बहाने बीजापुर पर चढ़ाई कर दी। मीर जुमला और औरंगजेब इस लड़ाई में अफसर थे। बहुत सी लड़ाई और मुकाबले के पश्चात् बादशाह बीजापुर में न ठहर सका उसने क्षमा की प्रार्थना

करनी शुरू की। जब औरंगजेब को शाहजहां के बीमार पड़ जाने की ख़बर मिली तो बीजापुर के बादशाह से सन्धि करके वह झट दिल्ली रवाना हो गया। इधर मुरादबख्श और शुजा भी आगरे की तरफ आ रहे थे। 'दारा शिकोह' शाहजहां की आज्ञानुसार राजधानी का कार्य कर रहा था। औरंगजेब ने लौटते ही मुराद को दम दिलासा दिया कि मैं तो फकीर हूं। मुझे राज्याधिकार से कोई सम्बन्ध नहीं है दारा शिकोह और शुजा को बस में करके तुम्हें गद्दी पर बिठाऊंगा और मैं अलग होकर खुदा का भजन करूंगा, क्योंकि मुझे तो खुदा की भक्ति चाहिए। राज्य से मुझे क्या काम। अपने दुर्भाग्य से मुराद इस पट्टी में आ गया। मुराद और औरंगजेब की सेनाओं ने मिलकर दाराशिकोह की फौज को भगा दिया। इस प्रकार एक एक करके औरंगजेब ने अपने भाइयों को पकड़ पकड़ कर धोखे से मरवा डाला। पिता शाहजहां को कैद करके स्वयं बादशाह बन बैठा। यह समस्त वृत्तान्त हिन्दुस्तान के इतिहासकार भली प्रकार जानते हैं। निदान 1657 ई. में औरंगजेब आगरा के सिहांसन पर विराजमान हो गया। शिवाजी भी औरंगजेब को खूब जानते थे। उन्होंने शिवाजी से सन्धि कर लेने की आज्ञा दे दी और कहा कि जो इलाके शिवाजी ने बीजापुर की रियासत से छीने हैं वह उन्हीं के पास रहेंगे और साथ ही यह भी हुक्म दे दिया कि 'दावल' और समुद्र किनारे के अन्य मुकाम भी शिवाजी ले लें। यों तो बीजापुर के राज्य को शक्तिहीन करने की यह चाल थी परन्तु वास्तव में औरंगजेब ने शिवाजी को कैद करने की चेष्टा की थी। इस प्रकार अनेक युक्तियां की गई। बीसों तरकीबें निकाली गई परन्तु शिवाजी औरंगजेब के हाथ न आयें, अलग ही रहे। इससे स्पष्ट ज्ञात हो गया कि शिवाजी अब औरंगजेब से दो दो हाथ करने को तैयार हैं।

शिवाजी ने सन् 1657 ई. के मई महीने में रात के समय ''जुनार'' शहर (जो मुगलों के इलाके में था) को घेर लिया और खूब लूटा। यहां से उनको तीन लाख 'गोपड़ा करन' घोड़े, बहुत से अपूल्य वस्त्र और अन्यान्य वस्तुएं प्राप्त हुई जिन्हें शिवाजी ने तुरन्त पूना और रामगढ़ भिजवा दिया। शिवाजी स्वयं ऐसे मार्ग से, जिन पर बहुत आदमी नहीं चलते थे, चल कर अहमदनगर पहुंचा और उसे लूटना शुरू कर दिया। इन्होंने बहुत घोड़े खरीदे और सवारों को नौकर रखा। मानकजी को, जो उनके पिता का विश्वासपात्र नौकर था फौज का अफसर बना दिया और एक अन्य लोकप्रिय मरहठा शिरोमणि नेताजी पालकर को भी अपने साथ ले लिया। शिवाजी उस महती शक्ति के विरूद्व भाग्य की परीक्षा करने लगे जो 100 वर्ष पूर्व से भारत की अधिपति बनी चली आती थी, जिसकी गद्दी पर आज औरंगजेब जैसा नृशंस और कपटी मनुष्य विराजमान था। यद्यपि शिवाजी राज–प्रबन्ध करने लगे थे परन्तू मन में निश्चय कर लिया कि जब तक सामना करने की पूर्ण सामग्री न हो जाये तब तक सामना न करना ही ठीक होगा और तब तक चापलूसी की बातों से ही औरंगजेब को भुलावा देते रहे।

ऊपर लिखा जा चुका है कि जब शाहजी दरबार बीजापुर में कैद किये गये थे तो शिवाजी ने शाहजहां से अपील की थी और शाहजहां ने उनको पांच हजारी का पारितोषिक दिया था। परन्तू शिवाजी ने उसे स्वीकार करने के स्थान पर कुछ प्रान्तों के विषय में अपनी देखमुखी और चौथ के अधिकार पेश किये थे। अन्त में शाहजहां ने यह प्रतिज्ञा की थी कि जब शिवाजी पांच हजारी पुरस्कार को स्वीकार करके दरबार में आ जायेंगे तो और अधिकारों पर भी विचार किया जायेगा। शिवाजी ने अब फिर इस विषय में औरंगजेब के साथ बातचीत की और बीजापुर के बादशाह आदिलशाह के कुप्रबन्ध की नींव पर 'कोंकण' प्रान्त पर स्वत्व

ज्माने की आज्ञा चाही तथा अपने पुराने अनुचर को पेश किया और बारी बारी से 'रघुनाथ' और 'कृष्णजी भास्कर' नामक वकीलों को मुगल दरबार में भेजा।

औरंगजेब इस समय राजपुतों से लड़ रहा था। उसने भी अपना अहोभाग्य समझा कि शिवाजी की तरफ से चिन्ता दूर हो। इसके सिवाय उसने यह सोचा कि यदि शिवाजी और आदिलशाह परस्पर लड़ते रहेंगे तो दोनों में से कोई भी मुगल साम्राज्य पर धावा न कर सकेंगे और परस्पर एक दूसरे की शक्ति क्षीण कर देंगे। फलस्वरूप शिवाजी को, कोंकण प्रान्त पर अधिकार जमाने की आज्ञा औरंगजेब ने दे दी। उसके वास्तविक अधिकारों के विषय में बाजी 'सोनदेव' को दरबार में भेजना निश्चय हुआ ि कवह दरबार में जाकर इस बात की चर्चा चलावें। शिवाजी को इसने आज्ञा भेजी तथा शेष सेना से राजमण्डल का प्रबन्ध करे। शिवाजी तथा औरंगजेब एक दूसरे को खूब जानते थे किन्तु ऐसा ज्ञात होता है कि वह पत्र–व्यवहार यहां तक रहा और आगे कोई फल नहीं हुआ अर्थात् कोई विशेष प्रतिज्ञा नहीं हुई। शिवाजी ने 'कोंकण' प्रान्त पर अधिकार करने के लिए तत्काल तैयारी शुरू कर दी और समुद्र तट के बहुत से स्थानों को अपने अधिकार में कर लिया।

सामुदायिक कार्य के लिए शिवाजी ने कुछ बेड़े बनवाये। 700 पठान सिपाही भी नौकर रखे। शिवाजी की यह इच्छा थी कि मुसलमानों को न नौकर रखा जाये परन्तू 'गामाजी' नायक ने जो इनके मामा का अत्यन्त बुद्विमान और विश्वस्त नौकर था शिवाजी को समझा बुझा कर सात सौ पठान नौकर रख लिये जो बीजापुर से निकाले हुए सिपाही थे। राघो बल्लाल इन पठानों का नायक नियुक्त किया गया। शिवाजी के मन्त्रियों में सब से उच्च अधिकार शामरावजी पन्त का था। 'कोंकण' की विजय प्राप्ति के लिए एक बहुत बड़ी सेना एकत्रित करके उसको प्रबन्धकर्ता नियत किया गया, परन्तु

परीक्षा से यह निश्चय हो गया कि वह सेना का नायक होने की योग्यता नहीं रखता है। फलस्वरूप उस नायक को बीजापुर की सेना के सम्मुख हारना पड़ा जिससे शिवाजी को अत्यन्त क्लेश हुआ। यह पहली हार थी यद्यपि वह स्वयं उस पराजय का उत्तरदाता न था। अतएव शामरावज़ी पन्त को पीछे बुला लिया गया और नायक पद से पृथक् कर दिया गया और उसके स्थान पर 'रघुनाथ पन्त' यद्यपि स्वयं रणभूमि से पीछे नहीं हटा परन्तु अपने विरोधी की भी नहीं हटा सका। अन्त को वर्षा ऋतु के आरम्भ होने से दोनों सेनाएं संग्राम–भूमि से पीछे हट गई। इस समय एक और बलवान् शत्रु शिवाजी के सामने आया।

अध्याय 5

अफजल खां की घटना

बीजापुर के शासक ने इस समय अनुमान लगाया कि शिवाजी को अधीन करना अत्यन्त आवश्यक है अन्यथा सम्पूर्ण देश निकल जाने का सन्देह है। इस लड़ाई के लिए बीजापुर दरबार ने प्रबन्ध आरम्भ कर दिया। अफजल खां ने (जो बीजापुर दरबार का एक पदाधिकारी था) इस सेना की सिपहसालारी स्वाकार की और चलते समय भरे दरबार में बड़ो अंहकार से यह प्रतिज्ञा की कि मैं बहुत शीध्र इस तुच्छ द्रोही को नंगे पांव दरबार में उपस्थित करूंगा अन्यथा उसका सिर काट लाऊंगा। शिवाजी को जब यह समाचार मिले तो उन्होंने प्रतापगढ़ के दुर्ग में सामना करने की तैयारी की। अफजल खां ने 5000 सवार तथा 7000 पैदल सेना, तोपखाना व अन्य सांग्रामिक सामग्री साथ लेकर चढ़ाई कर दी।

प्रतापगढ़ किला उन किलों में से है जिन्हें शिवाजी ने स्वयं बनवाया था। प्रतापगढ़ की स्थानिक अवस्था शिवाजी की बुद्विमत्ता तथा विचारशीलता का प्रमाण देती है। दक्षिण के नितान्त सिरे पर यह दुर्ग एक महान् मण्डल को सुदृढ़ करता है। पश्चिम में एक दर्रे के ऊपर है (जो कि दक्षिण से कोंकण जाने के लिए उचित रास्ता है) उत्तर में सावित्री नदी तथा कृष्णा के स्त्रोत हैं जो दुर्ग से कुछ ही मिल की दूरी पर महाबलेश्वर के मन्दिर के पास हैं। पश्चिम में कोवरी नदी बहती है और उसके तट इस दुर्ग (किले) की रक्षा करते हैं। पश्चिम की ओर ऊंची नीची ज़मीन का पहाड़ी देश है जो कोंकण तक चला गया है और 60 मील के फासले पर जा समुद्र में मिला है। प्रतापगढ़ दुर्गम पहाड़ों की श्रेणी में है जो उत्तर दिशा में है। किले की इमारत भी बड़ी मजबूत है।

दोहरी पक्की दीवारें उसके चारों तरफ हैं और चार मीनारें (बुर्ज) भी हैं।

उत्तरी किले में शिवाजी की आराध्या देवी का मन्दिर है और ऊपरी भाग में महादेव तथा पार्वती का मन्दिर है। शिवाजी के अपने निवास का स्थान भी इसी में है जो कि थोड़ी ही जगह में हैं। शिवाजी इसी किले के अन्दर थे जिस समय उन्होंने अफ़ज़ल खां की सेना देखी दिल में विचारा कि इस बड़ी सेना से सामना करना निष्फल है। अतएव सन्देशा भेजा और अत्यन्त नम्रता से क्षमा–प्रार्थना की । इस पर अफ़ज़ल खां ने एक गोपीनाथ ब्राह्मण को शिवाजी के पास भेजा कि यदि शिवाजी अफ़ज़ल खां इस बात का जिम्मा ले सकता है कि शिवाजी को बादशाह से मिला कर क्षमा दिला दिया और उसके साथ यह सम्मति की कि किसी प्रकार से अफ़ज़ल खां को एकाकी मिला देवे और यह भ्झी कहला भेजा कि यदि आप निःसन्देह सच्चे हैं और आपकी भावना में किसी प्रकार का पाप नहीं हैं तो स्वयम् अकेले किले के निकट आ कर मुझ से मिलिए और शपथ खाइये कि आप किसी प्रकार का धोखा मेरे साथ न करेंगे। मुसलमान लेखक लिखते हैं कि ऐसा सन्देश शिवाजी ने ब्राह्मण द्वारा भेजा था और अफ़ज़ल खां ने उसे मान लिया और अकेले उस स्थान पर आया जहां शिवाजी ने मुलाकात करने को कहा था। जब अफ़ज़ल खां बगलगीर को बढ़ा तो शिवाजी ने जो सुसज्जित था, अपने जातीय शस्त्र (बिछुवे) से उसका पेट फाड़ डाला और तलवार से काम तमाम कर दिया। अफ़ज़ल खां के साथ जो थोड़े से मनुष्य साथ आकर कुछ दूरी पर छिपे बैठे थे आ पहुंचे और सम्पूर्ण सेना में कोलाहल मच गया।

जो जो कटुशब्द यथा काफिर, चूहा आदि मुसलमान

www.hindustanbooks.com

लेखकों ने लिख मारा है और जो जो किंवदन्तियां शिवाजी की लल्लो चप्पों तथा चालों की लिखी हैं वे स्वयं इस बात की गवाही देती हैं कि मुसलमान निरिक्षकों की सम्मति पक्षपात शून्य नहीं है। सन्देह की अवस्था में प्रत्येक लेखक ने अपनी ही कल्पना से काम लेकर कोरी कल्पना द्वारा झूठे झूठे चित्र खींचे हैं। यह भी याद रखना चाहिए कि (अंग्रेज लेखक स्टाक साहब ने लिखा है) हिन्दुओं के विषय में साधारणतया तथा मरहठों के विषय में विशेषतया मुसलमान लेखकों के सम्पूर्ण लेख प्रायः ऐसी ही भूलों और पक्षपातों से भर पड़े हैं। स्टाक साहब ने लिखा है कि मुसलमानों के इतिहास के मुकाबले मरहठों के इतिहास अधिक विश्वास करने योग्य हैं। अतः सम्पूर्ण मरहठा लेख कइस बात पर सहमत हैं कि शिवाजी ने अफ़ज़ल खां स्वयम् उत्कण्ठित था कि शिवाजी को मेल जोल में फंसा कर हनन करे। शिवाजी शरीर से दुबले थे परन्तु अफ़ज़ल खां की मोटाई को कुछ नहीं समझते थे और उन्हें पूर्ण विश्वास था कि यदि अचानक एकाकी मेरे सम्मुख आ भी जायेगा तो मैं उसे कत्ल कर डालूंगा । दरबार से प्रस्थान करते समय अफ़ज़ल खां ने अत्यन्त अभिमान से कहा था कि शिवाजी को ज़रूर पकड़ लाऊंगा। इसी के कारण उसने अपने एक ब्राह्मण को शिवाजी के पास भेजा था कि वह जाकर शिवाजी को एकाकी मुलाकात करने के लिए उत्साहित करे तथा उसके द्वारा यह भी कहला भेजा कि यदि शिवाजी आधीनता स्वीकार कर लेगा तो उसके लिए बहुत उत्तम होगा। उधर शिवाजी को भी दूत ने यह सब समाचार दिया कि अफ़ज़ल खां की भावना दुष्ट है और उसकी इच्छा है कि किसी तरीके से शिवाजी को फंसाया जाय। अफ़ज़ल खां के दूत (उसी ब्राह्मण) को जब धर्म की सौगन्ध दी गई तो उसने सम्पूर्ण वृत्तान्त सत्य सत्य बखान कर दिया। शिवाजी ने

सेचा कि भाग्य परीक्षा अवश्य करनी चाहिए। अतएव मिलने की स्वीकृति दे दी। फलस्वरूप मिलने के लिए स्थान नियत किया गया। शिवाजी पूर्ण रूप से सुसज्जित हो कर रवाना हुए और अपने पूरोहित ब्राह्मणों को काशी तथा गया आादि स्थानों में पिण्ड देने के निमित्त भेज दिया और स्वयं पूजा भक्ति करके शस्त्र बांधा और भीतर 'सज्जो' पहिना। उसके ऊपर साधारण सादा 'अंगरखा' पहिना। इसका अभिप्राय यह था कि शिवाजी हर प्रकार से मरने के लिए उद्यत होकर अपने विश्राम भवन से निकला। जिस समय शिवाजी से बगलगीर होने की इच्छा से अफ़ज़ल खां आगे बढ़ा और पास जाकर शिवाजी का माथा पकड़कर जोर से दबाना आरम्भ किया और झट म्यान से तलवार निकाल शिवाजी पर चलाई, (परन्तु शिवाजी के बदन पर जो सज्जो आदि वस्त्र थे उसके कारण तलवार कुछ कार्य न कर सकी) तो शिवाजी ने अत्यन्त चतुरता के साथ बायें हाथ में लगा हुआ बिछूआ (बघनखा) अफ़ज़ल खां की आंतड़ियों में घुसेड़ दिया। अफ़ज़ल खां वहीं ढेर हो गया। उसका शरीर एक पहाड़ी पर दबा दिया तथा उसके सिर पर एक बुर्ज बनवा दिया जो अब भी वहां पर मौजुद है और 'अब्दुल्ला का मीनार' के नाम से प्रसिद्व है। अफ़ज़ल खां का असली नाम अब्दुल्ला था।

थ्वचार करने से ज्ञात होता है कि मरहठा लेखकों का वर्णन किया हुआ इतिहास इस विषय में 'खाफीकी खां' के इस लेख की अपेक्षा सत्य और ठीक है। जिसे पढ़ते समय तत्काल निश्चय हो जाता है ि कवह पक्षपात–पूर्ण तथा मिथ्या है क्योंकि यह कभी सम्भव नहीं हो सकता ि कइस सलूक के पश्चात् (जो कि शिवाजी के साथ दरबार बीजापुर की ओर से काम में आया था और उस विरोध के पश्चात् जिसे शिवाजी ने बीजापुर के राज्य के विरूद्व खड़ा किया था) अफ़ज़ल खां शिवाजी पर पूर्ण विश्वास करके मित्र भाव से इस प्रकार अपने आप को शत्रु के हाथ फंसा देता। दरबार बीजापुर ने

शिवाजी के पिता को कैद करके अत्यन्त दुष्टता का बर्ताव किया था। इसके अतिरिक्त अफ़ज़ल खां इस प्रस्थान तथा आक्रमण के मार्ग में सम्पूर्ण मन्दिरों को विध्वंस तथा नष्ट भ्रष्ट करता आया था । अफ़ज़ल खां ने ही शिवाजी के पुत्र शम्भा जी को धोखेबाजी से कत्ल किया था। यह बात अफ़ज़ल खां को भली प्रकार ज्ञात थी कि शिवा जी कट्टर हिन्दू है और उन्हें अपने धर्म की मानहानि तथा देवताओं के अनादर से अत्यन्त दुःख होता है। ईश्वर ने उसमें बदला लेने की शक्ति कूट–कूट कर भर दी है तो फिर हम किस प्रकार से यह निश्चय कर लें कि अफ़ज़ल खां एक साधारण मनुष्य था । जो इन घटनाओं के होते हूए भी बिना किसी प्रकार की दुष्ट भावना के अकेले ही एक प्रसिद्व नरशेर की कन्दरा में जा घुसा। यदि हम विचारार्थ यह भी मान लें कि ऐसी घटना हुई और शिवाजी ने धोखे से अफ़ज़ल खा को कत्ल किया तो भी कुछ आश्चर्य की बात नहीं, क्योंकि उस समय में शत्रु को इस प्रकार से मार लेना बुरा नहीं माना जाता था। औरंगजेब ने इसी प्रकार के व्यवहारों से दिल्ली के राज्यसिंहासन पर अधिकार जमाया था। इस घटना से कुछ दिन पूर्व बीजापुर का राज्यमन्त्री 'आजम खां' भी इसी प्रकार मारा गया था और उसका पुत्र 'खवास खां' भी पीछे से इसी प्रकार से मरा। स्वयं औरंगजेब ने इसी भाव से शिवाजी को दिल्ली में बन्दी किया था। भावार्थ यह कि भारत का इतिहास ऐसी घटनाओं से भरा पड़ा है। मुसलमानों ने युद्वशासन के अनुसार इस प्रकार शत्रु को मारना पाप नहीं समझा। जैसा वर्तमान समय में समझा जाता है। राजपूतों का युद्वशासन तो अपनी पवित्रता, पुरूषार्थता और वीरता में सब जातियों से उच्च है। धोखा तथा दगा तो क्या! राजपूतों ने घिरे हुए शत्रु को मारना भी वीरता से बाहर समझाा अन्यथा उन्हें कई बार अवसर मिल चुके थे कि वे भारतवर्ष से यवनराज्य का नामोनिशान मिटा देते।

अफ़ज़ल खां के मरते ही सम्पूर्ण सेना में खलबली मच गई और मराठों ने शत्रु रक्त में हाथ रंगने शुरू कर दिये। सम्पूर्ण इतिहासकार इस बात से सहमत हैं कि शिवाजी इस प्रकार के कर्म से सदा अप्रसन्नता प्रकट करता था और आज्ञाएं निकाल रक्खी थी कि यथासम्भव किसी के साथ अनावश्यक युद्व न छेड़ा जाये। शिवाजी कैदियों के साथ सदैव अत्यन्त क ृपा तथा दया का बर्ताव करता था। इस अवसर पर जितने शत्रु के सैनिक कैद कर लिऐ गये उनके साथ भी शिवाजी अत्यन्त अनुग्रह और दया से पेश आता था। बहुत से लोगों ने इसी अनुग्रह के कारण इसकी नौकरी स्वीकार की थी। 'भूभराय घाटमी' एक बड़ा मान्य मरहठा था जो किसी समय शिवाजी के पिता शाहजी का परम मित्र था शिवाजी उसे इस बात पर उद्यत न कर सका कि वह बीजापुर की पौकरी छोड़ कर शिवाजी की नौकरी करे फिर भी शिवाजी ने उसको बहुत सा पुरस्कार देकर विदा किया था। अपनी सेना के चोट खाये हुए वीरों को उन्होंने बहुत सी बहुमूल्य वस्तुएं (सोने के हार तथा चांदी की जंजीरें) उपहार में दी थीं साधारण रीति से वह अपनी सेना को प्रसन्न रखने का प्रयत्न करता था जिससे उनका उत्साह दिन प्रतिदिन द्विगुणित होता रहता था अफ़ज़ल खां की तलवार अब तक शिवाजी के वंशधरों (जो कोल्हापुर में राज करते हैं) के पास है। इस घटना से शिवाजी की शक्ति और भी बढ़ गई और थोड़े ही समय में अन्य कई किलों पर भी उनका अधिकार हो गया। बीजापुर के दरबार ने अफ़ज़ल खां की मौत का समाचार पाकर 'रूस्तनेज खां' को आज्ञा दी ि कवह कोल्हापुर को बचाने के लिए सेना लेकर जाये परन्तु शिवाजी ने उसे भी आक्रमण करके परास्त कर दिया। इसके पश्चात् शिवाजी ने सीधा राजपुर (जहां अंग्रेजों की बस्ती थी) का मार्ग लिया और वहां से 'कर' तथा 'भेंट' लेता हुआ 'बहिल' पर अधिकार जमा लिया। वहां से उन्हें

www.hindustanbooks.com

बहुत सी सम्पत्ति प्राप्त हुई जो तुरन्त राजगढ़ कर दी गई। जब राजा को इस बात का समाचार मिला कि शिवाजी विजय प्राप्त करते हुए और नगरों तथा गावों में अपना अधिकार जमाते हुए सीधे हमारी तरफ आ रहा है तब मुसलमान बादशाहों के कान खड़े होने लगे और वे सामना करने की तैयारियां करने लगे। 'बहशी गुलामसीदी जौहर' को आज्ञा मिली कि सेना लेकर आगे बढ़े और अफ़ज़ल खां का पुत्र 'फाज़िलखां' जो अपने पिता का बदला शिवाजी से चुकाना चाहता था उसके साि हो लिया (दोनों को आज्ञा मिली कि 'पलाना' किला) (जो अभी थोड़े दिन पहले शिवाजी ने प्राप्त किया था) उस पर आक्रमण करें। देसरी तरफ से फतेहखां को आज्ञा दी गई । 'सीदी जौहर' को सलावतखां की पदवी दी गई। शिवाजी ने भी युद्व की तैयारी आरम्भ कर दी और 'रघुननाथपन्त' को आज्ञा दी कि फतेहखां का सामना करे तथा 'आबाजी सोनदेव' कल्याण भभेरी के किले पर तैनात किये गये। 'भाऊजी पालकर' को आज्ञा मिली िकवे बारी के सामन्त लोगों का सामना करे। पूर्णधर, संगर व प्रतापगढ़ और आस पास के इलाके की रक्षा के लिए 'मोरोपन्त' को रखा गया और स्वयं शिवाजी 'पलाना किले' की रक्षा में कटिबद्व हो गये। शिवाजी ने बीजापुर की सेना को आगे बढ़ने से नहीं रोका परन्तु जब सेना दुर्ग के पास आ डटी तो 'नेता जी पालकर' ने आसपास की बस्ती उजाड़ना शुरू कर दिया और यत्न किया कि जिससे शत्रु को भोजन सामग्री मिलनी कठिन हो जाये। मावली लोगों ने पर्वतों को घाटियों को छोड़ कर अलग बस्ती बसाई और यदा कदा शत्रु पर आक्रमण कर उनका विध्वंस करने लगे! यद्यपि शिवाजी के साथियों ने इस प्रकार शत्रु को अधिक हानि पहुंचाई परन्तु तब भी 'सीदी जौहर' धैर्य से मैदान में डटा रहा। उधर कोंकण में भी युद्व आरम्भ हो गया जिससे

मुसलमानों ने कुछ समय तक लाभ उठाया। 'बाजीराव पालकर' भी 'बारी' के अध्यक्ष को अपने आधीन न कर सका। इस पिछली लड़ाई में दोनों ओर के अध्यक्ष मारे गये परन्तु सेना ने हार न मानी।

हा शोक! कितने योद्वा और वीर अपने भाइयों के हाथों मोर गये। ऐसा कोई नहीं था जो समझता कि अपने भाइयों का विध्वंस करना (भाई भी कैसे जो धर्म युद्व करने तथा निर्दयी शत्रुओं के हाथों से अपनी भूमि छुड़ाना चाहते थे) महापाप है। दुर्भाग्य ! भारतवर्ष के इसी भीतरी संग्राम ने 'तरावड़ी' के मैदान में भारतवर्ष से हिन्दू राज्यों की समाप्ति कर दी। इसी भीतरी संग्राम ने पीछे कई आक्रमणकारी मुसलमानों को भारत को लूटने का अवसर दिया। इसी भीतरी संग्राम ने हिन्दुओं को जातीय अवस्था से अलग कर दिया। इसी भीतरी संग्राम ने मरहठों की अवनति की। इसी ने शिवाजी के हाथ से लगाये हुए पौधों को समूल नष्ट कर दिया। इसी पारस्परिक संग्राम ने सिखों का नाश किया तथा अब भी यही परस्पर का संग्राम हिन्दुओं की उन्नति तथा पारस्परिक प्रेम में बाधक है। बहुत अच्छा होता यदि कोई दैवी आकाश वाणी होती और इन लोगों को पारस्परिक युद्व की हानियां समझा कर रोकती।

शिवाजी को जब समाचार मिला तो उसने समझा कि मैंने बड़ी भारी भूल की जो इस प्रकार किले में घिर कर बैठ गया। घेरे को चार महीने हो गये यद्यपिइ इस समय तक शत्रु को आक्रमण करने का कोई अवसर नहीं मिला तथापि शत्रु तब भी डटा रहा और सचेत रहा। अन्त को शिवाजी ने एक नई चाल अर्थात् सन्धि के लिए बातचीत चलाई। दोनों ओर से लड़ाई बन्द कर दी गई। अभी पूर्ण रूप से मिलाप होने न पाया था और सम्पूर्ण नियम भी निश्चित नहीं हुए थे कि रात को शिवाजी ने कुछ साथी लेकर किले से निकल कर पर्वतों से होते हुए जंगलों का रास्ता लिया। शिवाजी पूर्ण उत्तेजना से

www.hindustanbooks.com

'अगना' की ओर प्रस्थान कर रहे थे पर विरोधियों को यह हाल मालूम हो गया कि शिवाजी किले से निकल भागे। तत्काल ही फ़ाजिल मुहम्मद खां और सीदीजौहर का पुत्र सैदी अजीज पीछा करने के लिए रवाना किये गये। परन्तु शिवाजी ने इसके पहले पूरा प्रबन्ध कर दिया था। अर्थात् इस आपत्ति को हटाने के लिए अपने 'मावली' साथियों का एक समूह मार्ग में छोड़ दिया था जिसका प्रबन्ध बाजीराव देशपाण्डे के आधीन था। जब पीछा करने वाले मुसलमान आ पहुंचे तो उनके साथ सेना बहुत अधिक थी तथा मरहठे संख्या में बहुत कम थे। शिवाजी ने आज्ञा दी थी कि जब तक (हमारी ओर से) पांच गोलियां न चलें तब तक लड़ते रहना और अमुक दिशा में लगातार पांच गोलियां चल जाये तो समझ लेना कि हम सुख से किले से पहुंच गये। देशपाण्डे और वे मावली अत्यन्त वीरता से लड़ते रहे, आधे के लगभग मारे गये परन्तू फिर भी शत्रु को रास्ता नहीं दिया। यहां तक कि देशपाण्डे भी लड़ते लड़ते मारे गये। यह अभी जमीन पर गिरे भी न थे कि गोलियों का शब्द सुनाई दिया। देशपाण्डे ने समझा कि शिवाजी सकुशल किले में पहुंच गये इस प्रकार खुशी से उन्होंने अपने प्राण त्याग दिये। अन्य साथियों ने देशपाण्डे की लाश को उठाकर अगणित शत्रुओं को हताश छोड़ कर अपना रास्ता लिया। इस कार्यवाही में जब 'सीदी जौहर' की सब तरकीबें खा़क में मिल गई तो वह इस उधेड़बुन में पड़ गया कि वह 'पलाना' के घेरे पर स्थित रहे अथवा शिवाजी के पीछे जाये। इधर जब बादशाह को यह समाचार मिला तो उसने 'सीदी जौहर' पर यह दोष लगाया कि उसने शिवाजी से रिश्वत ले ली है जिसे सुनकर वह क्रोध स`जल उठा और वैसा ही उसने उत्तर लिख भेजा जो बादशाह के लिए बड़ा अनादर सूचक था। अन्त में बादशाह स्वयं युद्व करने के लिए चल पड़ा। पलाना का किला पावनगढ़, आंगन और विशालगढ़ तथा आसपास के किले जो शिवाजी ने ले लिये थे बादशाह के

हाथ आ गये। इतने में वर्षा आरम्भ हो गई। बादशाह ने कृष्णा नदी के किनारे ''चमलगे'' स्थान पर अपना खेमा जमा दिया। शिवाजी ने यद्यपि बादशाह का सामना नहीं किया परन्तु फिर भी वह चुपचाप नहीं रहा। वर्षा के प्रारम्भ में वह 'राजापुर' के सामने जा उपस्थित हुआ और उसने उस नगर को लूटा। इस अवसर पर अंग्रेजो की भी कुछ हानि हुई और कई एक बड़े कारखाने वाले पकड़ कर कैद कर लिये गये। शिवाजी को इन पर सन्देह हो गया था कि इन्होंने 'पलाना' के घेरे के समय शत्रुओं को बारूद और गोली की सहायता दी थी। शिवाजी को उस समय यह ध्यान न था कि यही अंग्रेज व्यापारी शीध्र ही भारतवर्ष के स्वामी बन जायेंगे और शिवाजी की सन्तान उनके आधीन एक कर देने वाले साधारण मण्डलेश (राजा) से अधिक कीर्ति वाली न रहेगी।

शिवाजी को यह ध्यान न था कि यवन राज्य के नाश होने से उनकी जाति का कुछ लाभ न होगा किन्तु एक दूसरी ही जाति यवनों के नष्ट होने से लाभ उठायेगी और सिंहासन पर अपना आधिपत्य जमा लेगी। राजापुर से निकल कर शिवाजी ने एक हिन्दू राजा 'दलवी' की उपजाऊ भूमि पर आक्रमण किया और उसकी राजधानी 'सुरंगापुर' पर अधिकार जमा लिया। 'दलवी' की हिन्दू प्रजा ने शिवाजी की इस करतूत को पसन्द न किया और राज्य छोड़ कर जाने लगे। शिवाजी ने एक प्रसिद्व और उच्चवंशीय 'सरदवे' नाम के सरदार को समझा बुझा कर वापस बुलाया जिसके साथ बहुत सी हिन्दू प्रजा भी लौट आई। उसी वर्ष वर्षा ऋतु में उन्होंने प्रतापगढ़ में एक मन्दिर बनवाया और रामदास जी स्वामी को अपना गुरू मानकर पूजन का भार सौंप दिया। उसका पूजन ऐसा न था जो उसकी संग्राम की कार्यवाहियों अथवा देशप्राप्ति में सहायक होता। वर्षा भर फतेह खां के पीछे लगे रहने पर कई एक गांवों पर उन्होंने विजय प्राप्त की। अब बीजापुर का थोड़ा सा हाल सुनिये। बादशाह एक और सन्देह में पड़ा।

ऊपर लिखा जा चुका है कि राजा को सीदीजौहर पर रिश्वत लेने का सन्देह हो गया था। अतएव दोनों में मनमुटाव हो जाने के कारण अन्त में बादशाह स्वयं रणक्षेत्र में उतरा तो 'सीदीजौहर' ने क्षमा मांगी। यद्यपित ब भी 'सीदीजौहर' के दिल में ऐसा भय समाया हुआ था कि बादशाह के सामने आने की हिम्मत न पड़ी और वन्दन शिष्टाचार करके चला गया। जब बादशाह कृष्णा नदी के तट पर ठहरा हुआ था तो उसने सन्देश भेज कर सीदीजौहर को बुलाया। यद्यपि 'सीदीजौहर' आया और वन्दन शिष्टाचार करके चला गया परन्तु इब्राहिम खां को जो बादशाह का मन्त्री था (और शीदीजौहर का कट्टर शत्रु था) खटका ही लगा रहा।

इसी समय कर्णाटक में गड़बड़ हो गई और कुछ विद्रोही तैयार हो गये। बादशाह स्वयं शिवाजी के पीछे जाना चाहता था परन्तु जब सीदीजौहर की ओर से उन विद्रोहियों को दबाने की रूचि न पाई गई तो बादशाह को 'सीदी' पर सन्देह हुआ कि यह भीतर ही भीतर शिवाजी से मिल गया है। तब भी बादशाह मन्त्रियों से सलाह लेकर शिवाजी पर चढ़ाई करने के बजाय कर्णाटक पर अधिकार करने के लिए आगे बढ़ा। 'बहलाले खां' और बाजीघोरपड़े किसी काम से अपनी जागीर में गये हुए थे। बाजीघोरपड़े ने शिवाजी के पिता को छल करके कैद किया था और बीजापुर भेज दिया था। शिवाजी सदैव इसी चिन्ता में रहा करते कि किसी तरह से 'बाजी' से बदला लें। अवसर अच्छा पाकर शिवाजी ने तुरन्त 'बाजी' पर चढ़ाई कर दी और सम्बन्धियों सहित उसे हनन कर डाला तथा 'मौधल' को लूट कर तुरन्त विशालगढ़ वापस आ गये। राजदरबार की ओर से 'खवासखां' शिवाजी को दबाने के लिए नियत किया गया परन्तु थोड़ी देर बाद सम्पूर्ण सेना (जो शिवाजी का सामना करने के लिए नियत की गई थी) वापस बुला ली गई और बीजापुर के बादशाह ने शिवाजी के पिता से

मेल कर लिया। इसी बीच 'बाजीघोरपड़े' का देहान्त हो गया।

'बाजीघोरपड़े' की मृत्यु का समाचार जिस समय शाहजी (शिवाजी के पिता) ने सुना तो अत्यन्त प्रसन्न हुए। इसी अवसर पर अपने पुत्र शिवाजी से मिलने के निमित्त कर्णाटक से इधर आये। शिवाजी ने जिस समय समाचार सुना तो अपनी श्रद्वा और पितृभक्ति के अनुसार कुछ मीलों आगे चल कर अपने पिता की अगवानी की और घोड़े से उतर कर आदर पूर्वक वन्दना की।

इस समय शिवाजी के पास पचास हजार पैदल सेना और सात हजार घुड़सवार सेना थी। चारों तरफ उनकी धाक जमी हुई थी। बीजापुर का राज्य और मुगलिया शासन चक्र तथा पश्चिम का इलाका कम्पायमान हो रहे थे। शिवाजी ने केवल थल संग्राम ही में नहीं अपितू सामुद्रिक संग्राम में भी नाम पैदा कर लिया था। सामुद्रिक संग्राम के लिए उन्होंने एक बहुत बड़ा 'बेड़ा' बनवाया था और 'कुलावा' को अपना बन्दरगाह नियत करेक जलमार्ग से भी शत्रु को सताना आरम्भ कर दिया। पुर्तगाल वालों ने तो शिवाजी का लोहा मान कर मित्रता कर ली थी। इसी बीच बीजापुर के बादशाह से भी सन्धि हो गई। अब शिवाजी ने मुगलिया राज्य की ओर दृष्टि फेरी।

अध्याय 6

मुगलवंश का सामना

शिवाजी ने बीजापुर के बादशाह से छुट्टी पाकर मुगल राज्य से सामना करने का विचार किया। एक पुष्कल[3] सेना एकत्र करके दो भाग किये। पैदल सेना का अध्यक्ष तो 'मोरपन्त' को बनाया और घुड़सवार सेना की बागडोर 'नेताजी पालकर' के हाथ में थमा दी और आज्ञा दी कि मुगलिया मण्डल को नष्ट भ्रष्ट करके अपना राज्य निष्कण्टक बनाने के लिए कार्य आरम्भ कर दो। फलस्वरूप 'नेताजी' औरंगाबाद तक लूट खसोट करके लौट आये और पूना में विश्राम किया। जब यह सब समाचार औरंगजेब को मिला तो क्रोधित होकर 'शायस्ता खां' मुखिया को आज्ञा दी कि तत्काल एक महती फौज लेकर इस उजड्ड तथा धूर्त मरहठे की दुर्गति कर दे और उसके सम्पूर्ण मण्डल को ध्वस्त करके राज्य अपने अधिकार में कर ले और शिवाजी को कैद कर लाये। शायस्ता खां इस आज्ञा का पालन करने के लिए एक बड़ी भारी सेना के साथ रवाना हुआ और रास्ते में किलों को फतह करता हुआ पूना तक आ पहुंचा और यहां से 'चाकन' के किले पर आक्रमण कर दिया। 'फिरंगा निर्मला' जो 'चाकन' के किले का अध्यक्ष था अपने साथियों के साथ बड़ी वीरता से लड़ता रहा। सम्पूर्ण सेना को लिऐ हुए शायस्ता खां 55 दिन तक किला घेरे अड़ा रहा। अन्त को 56 वें दिन जब किले की दीवार गोलियों के काण जर्जर और चलनी हो गई तो वीर मरहठे प्राणों की माया को छोड़ कर मुगलिया सेना पर टूट पड़े और दिन भर युद्ध करते रहे। सूर्यास्त तक उन्होंने मुगल सेना को एक पांव भी आगे नहीं बढ़ने दिया। अन्त में सूर्यास्त के समय लड़ाई बन्द

[3] बड़ी

हो गई। प्रातःकाल मराठे दुर्गाध्यक्ष ने इतनी बड़ी सेना से सामना करना निष्फल जाकर किले को खाली कर दिया। मुगल सेनापति ने उन सब की बड़ी प्रशंसा की और दुर्गाध्यक्ष से बड़ी नम्रता के साथ मिला यहां तक की उनको सम्राट् की सेना में एक उच्च पद पर अधिकारी बनाया परन्तु वीर 'निर्मला' ने यह पद स्वीकार न किया। यद्यपि औरंगजेब समझता था कि मरहठों को अपने अधीन करना कुछ बड़ी बात नहीं है परन्तु शायस्ता खां को इस लड़ाई से पता लग गया कि मरहठा लोगों को अधीन करना कुछ खेल नहीं है। अतएव वह लड़ाई से बचाव करने लगा। उधर औरंगजेब की तरफ से जोधपुर के महाराजा यशवन्तसिंह अपनी सेना के साथ तुरन्त शायस्ता खां की सहायता के लिए रवाना हुए। शाही सेना अपने वीर अध्यक्षों सहित कुछ काल तक चुपचाप पूना के सापने पड़ी रही परन्तु इतनी बड़ी सेना से भयभीत न होकर शिवाजी के दिलजले अफसर शत्रु की सेना तथा उसके मण्डल को नीचा दिखाने से पीछे नहीं हटते थें 'नेताजी पालकर' भी अहमद नगर और औरंगाबाद के सामने आ डटा। उन्होंने शत्रु के मण्डल को लूटना तथा फूंकना आरम्भ किया जिससे मुगल सेना अत्यन्त क्षुब्ध हो उठी और एक समूह उन्हें दण्ड देने के लिए रवाना हुआ जिसका सामना करता हुआ 'नेताजी' जख्मी हुआ पर हाथ न आया।

इसी बीच शायस्ता खां पूजा में आ गया और उस मकान में रहने लगा जो कि 'दादाजी कोंडदेव' ने बनवाया था। वीर शायस्ता खां ने यह भी विचार न किया कि शिवाजी उन महावीरों में से है जिसके सामने अनादर और गुस्ताखी से पेश आना अन्त में अच्छा फल नहीं लाया करता । यद्यपि शायस्ता खां ने बड़ी सावधानी से प्रबन्ध किया था कि शिवाजी किसी प्रकार भी नगर के भीतर घुसने न पावें परन्तु अन्त में यह बात सिद्व हो गई कि उसकी सभी तदबीरें, बुद्विमानी और विचारशीलता शिवाजी के सामने निष्फल हुई।

www.hindustanbooks.com

औरंगजेब के सिपहसालार शायस्ता खां ने आज्ञा दी रखी थी कि कोई मरहठा बिना प्रमाणपत्र नगर के भीतर न आने पावे परन्तु शिवाजी ने अपनी चालाकी से प्रमाणपत्र प्राप्त कर किला और नगर में प्रवेश किया। शायस्ता खां की सेना के एक मरहठे सिपाही ने अपनी लड़की के विवाह के बहाने शहर में बाजे गाजे के साथ जुलूस निकालने की आज्ञा दी। इस बारात में कुछ शस्त्रधारी भी थे। शिवाजी जो 'संगरह' के किले से शाम को रवाना हुए थे रात को 25 मावलियों और अफसरों के साथ चुपचाप उस जुलूस में (जो बाजार में चक्कर लगा रहा था) आकर शामिल हो गये। जब सब लोग सो गये तो शिवाजी और उनके साथियों ने जो 'दादाजी' के मकान की ईंट–ईंट से परिचित थे कुल्हाड़ियां लेकर 'रसोई घर' के ऊपर चढ़ गये जहां से उन्होंने अन्दर घुसने का मार्ग बनाया परन्तु कुछ खटका होने से शायस्ता खां की स्त्रियां जग गई और कोलाहल मच गया। शायस्ता खां भी जाग पड़ा और एक खिड़की के रास्ते निकल कर भाग जाने की कोशिश में था कि शिवाजी ने उसके हाथ पर वार किया। फलस्वरूप उसकी एक अंगुली कट गई। शायस्ता खां तो किसी प्रकार बचकर भाग निकला परन्तु उसका लड़का 'अब्दुल फतेह खां' और बहुत से सिपाही मारे गये। जब वे तीन या चार कोस की दूरी पर पहुंचे तब उन्होंने मशालें जलाई मानो वे शाही सेना को, जो सामने खड़ी थी, दिखला रहे हैं कि हम कैसी प्रसन्नता से बिना किसी चिन्ता–भय के मशालों की रोशनी में आनन्द लेते हुए अपना काम करके वापस जा रहे हैं।

शिवाजी का यह काम उनके जीवन के बड़े कारनामों में मुख्य गिना जाता है, और क्यों न हो, जब कि सारी शाही सेना सामना करने के लिए सुसज्जित हो और शिवाजी 25 मनुष्यों के साथ शायस्ता खां के महल में जा घुसे और मार काट करके

बिना किसी प्रकार की हानि के मशालों की रोशनी में गरजते हुए अपने किले में वापस आये। यह एक ऐसी करतूत है जो फुरती से भरे हूए वीर के हिस्से में पड़ी है। प्रातःकाल होते ही मुगल सेना किले की ओर बढ़ी और जब बिल्कुल समीप पहुंच गई (जहां से कि तोपों के गोलों से भाग कर बचना सम्भव न था) तो उसने तोपें चलाना आरम्भ कर दीं। मरहठा सरदार,जो कि पहाड़ियों में छिपे हुए थे मुगल सेना पर टूट पड़े। अब मुगल सेना के पास भागने के सिवा कोई चारा न रहा। अब मुगल सेना के पास भागने के सिवा कोई चारा न रहा। आगे आगे मुगल सेना और पीछे पीछे मरहठा सरदारों की मार से मुगल सेना के बहुत से सिपाही मारे गये।

जब शायस्ता खां को इस पराजय का समाचार मिला तो उसका दिल टूट गया और निरूत्साही हो यशवन्तसिंह को झूठी शिकायतें करने लगा। पहले तो औरंगजेब ने इन दोनों को वापस बुला लिया और उनके स्थान में अपने पुत्र 'मुअज्जम' को रवाना किया। परन्तु फिर शायस्ता खां को बंगाल का शासन देकर यशवन्तसिंह को मरहठों के मुकाबिले के लिए भेजा परन्तु यशवन्तसिंह को भी पूरी सफलता न मिली कि वह शिवाजी को पहाड़ी किले से निकाल बाहर करता। अन्त में लाचार होकर अपनी सेना का कुछ भाग 'चाकन' और 'जूनर' के किलों पर छोड़ कर शाही सेना का औरंगाबाद वापस आना पड़ा।

शिवाजी ने विचार किया कि कुछ धन एकत्रित करना चाहिए क्योंकि लगातार संग्रामों और दौरों से उसकी सेना को माल हाथ लगने का कोई भी अवसर नहीं मिला था। इसलिए अपने साथियों में यह प्रसिद्व कर दिया कि मैं नासिक के मन्दिर में दर्शन करने के लिए जा रहा हूं परन्तू चुपचाप 4000 सवार लेकर जनवरी सन् 1664 ई. में 'सूरत' पर चढ़ाई कर दी। सूरत उन दिनों खूब दौलत से भरा था। छः दिनों तक शिवाजी ने बराबर शाही शहर को लूटा और बहुत सा माल लेकर अपने रायगढ़ के किले में, जो कि

उस समय ठीक बन चुका था, आ पहुंचे। उस समय अंगरेज और डच लोगों ने अपनी बस्तियों को बहुत मुश्किल से बचाया नही ंतो और भी बहुत सा धन हाथ आता। लौटने पर शिवाजी को समाचार मिला कि उनके पिता शिकार खेलते समय घोड़े पर से गिर जाने के कारण मर गये। 'शाहजी' की मृत्यु सुन कर शिवाजी पित्शव की अन्त्येष्टिक्रिया में लग गये। इस काम से छुट्टी मिलने पर शिवाजी ने कुछ दिन तक राज्य का प्रबन्ध किया। इसी अवसर पर उन्होंने अपने लिए राजा की पदवी तजबीज की और अपने नाम का सिक्का चला दिया। इस प्रकार 20 वर्ष के भीतर एक यवन राज्य के जागीरदार के होनहार पुत्र ने केवल बुद्विमत्ता और ईश्वरप्रदत्त शक्ति एवं वीरता से अपने और जाति के शत्रुओं से लड़ भिड़ कर और मार काट करके एक हिन्दू राज्य की नींव डाली और अपने आपको पहला हिन्दू राजा बनाया।

औरंगजेब जैसा बलवान् सम्राट् बड़े बड़े वीर राजपूतों के सहायक होने पर भी एक नये उठते हुए सितारे की उन्नति का अवरोध न कर सका। अवरोध करना तो दूर रहा, शाही सेना के मुकाबले शिवाजी को बहुत से अवसर अपनी वीरता ओर धीरता और बुद्विमत्ता के दिखलाने के मिले। शिवाजी ने अपने शत्रुओं पर यह सिद्व कर दिया कि जो मनुष्य मरने मारने के लिए उद्यत हो वह एक ऐसा बलवान् मनुष्य हो जाता है जिससे बड़े बड़े राज्य भयभीत होते हैं और कभी कभी उजड़ भी जाते हैं। उसने अपने कामों से सिद्व कर दिया कि 16वीं शताब्दी के हिन्दुओं में भी कुछ महाभारत और रामायण काल के हिन्दुओं का रक्त शेष था। यद्यपि सामान्यतया उनका रक्त बिगड़ कर सड़ने लग गया था। परन्तु फिर भी जरा सी चोट के लगने से ज्वालामुखी पर्वतों के समान उबल पड़ता था। और प्रमाद में अन्धे होकर बैठे रहें तो मुद्दतों चूं न करें, चाहे इधर की दुनिया उधर हो जाये परन्तु जब एक बार सामना करने की ठान लें तो प्रलय कर दें।

क्रोध से यदि भाल में रेखा हमारे आ पड़े।

शीश पर हो शीश तन पर तन व कर पर कर चढ़े।।

कुरते की बाहें यदि चढ़ें, आकाश भी हिल जायेगा।

बस उस तरह से ही तुरन्त तख़्ता ज़मीं थर्रायगा।।

जिस प्रकार ज्वालामुखी पर्वत मुद्दतों के विकारों का अपने भीतर लीन करके पुनः एक दिन अकस्मात् फूट पड़ता है, और अपनी भभक से आगा पीछा नहीं देखता। इसी प्रकार दक्षिण भारत के वीरों में जो विकार दीर्घकाल से भरा हुआ था वह शिवाजी का रूप धर कर फूट निकला। इसका फल यह हुआ कि जो मार्ग में आया झुलस गया और चारों ओर जहां भी शिवाजी ने हथियार उठाया, अपना सिक्का जमा दिया। शिवाजी ऐसे भोले न थे कि वे इस

प्रसन्नता में यह भूल जाते कि उनकी जाााति का एक कट्टर शत्रु औरंगजेब अभी तक उनकी ताक में लगा है और कदापि सम्भव नहीं कि वह शिवाजी को सुख से राज्य करने दे, तिस पर भी तुर्रा यह कि शिवाजी के एक अफसर ने कम्का जाने वाले मुसलमानों का जहाज लूट लिया और सम्पूर्ण यात्रियों से दण्ड के तौर पर पुष्कल धन लेकर छोड़ा। दिल्ली के बादशाह औरंगजेब को भी यह विचार न आया था कि कदाचित् कोई हिन्दू राजा भी मुसलमानों से दण्ड लेने की शक्ति रखता है। यह सुन कर कि एक बेअदब और धूर्त मरहठे ने मक्का जाने वाले एक जहाज को लूट लिया है। औरंगजेब को बड़ा क्रोध आया और उसने शपथ खाई कि जब तक उस टेढ़े नेत्र वाले अभिमानी हिन्दू का सिर न काट लूंगा तब तक चैन नहीं लूंगा। परन्तु ईश्वर की लाला ईश्वर के सिवा कौन जान सकता है क्योंकि न तो औरंगजेब सर्वशक्तिमान् था और न उसे इन बातों का ही ज्ञान था।

अध्याय 7

महाराजा शिवाजी के अन्य कार्य

अगस्त सन् 1665 ई. में शिवाजी फिर अपने शत्रु को परास्त करने के लिए रवाना हुए और पहले ''पटहव–अहमद नगर'' को लूटा और फिर औरंगजेब के आसपास को निष्कण्टक किया। विजयपुर[4] की सेना ने प्रतिज्ञा–पत्र को तोड़ कर 'कोंकण' पर आक्रमण किया था। इसीलिए शिवाजी भी इस जोड़ तोड़ में बिजली के समान कभी यहां कभी वहां जा निकलते थे। अंग्रेज निरीक्षकों[5] ने लिखा है कि शिवाजी की चेष्टाएं ऐसी चुस्त और तीक्ष्ण होती थीं जिसके कारण वे प्रत्येक स्थान पर दिखाई दिया करते थे। लोग समझते थे कि शिवाजी उत्तर दिशा को जा रहे हैं परन्तु फिर पता चलता ि कवह तो दक्षिण में जा पहुंचे। आज एक स्थान, कल देसरे स्थान में, परसों दूर एक तीसरे स्थान पर, सारांश यह कि वह ऐसी फुर्ती से काम करते थे कि शत्रु देख कर चकित हो जाते थे । वहे सदैव इसी विचार में रहते थे कि वह (शिवाजी) कोई मनुष्य है अथवा भूत–प्रेत। उनका समाचार प्रबन्ध (डाक विभाग) ऐसा पूर्ण और सच्चा था कि शिवाजी के पास शत्रु के घर के समाचारों का एक एक अक्षर ठीक ठीक और समय पर पहुंचाता था।

सामने मैदान में सारी शाही सेना पड़ी है, एक ओर विजयपुर की सेना धमकियां दे रही है। आपने यह प्रसिद्व कर दिया कि हम शाही सेना पर आक्रमण करेंगे और अगले दिन झट अपने समुद्री बेड़े में (जिसमें 85 छोटी छोटी नावें और तीन बड़े जहाज थे) सवार होकर 'वार्सलीवर' नगर में आ पहुंचे जो

---

[4] बीजापुर

[5] इतिहास के अनुसन्धानकर्त्ता

'गोवा' से मील दूरी पर था और लूट मार के बाद 4000 मनुष्यों को साथ लेकर किनारे से बहुत दूर जा निकले। अब शत्रुओं को ज्ञात हुआ कि शिवाजी अपनी राजधानी में नहीं हैं। फिर क्या था, इधर उधर तलाश होने लगी। अभी दुश्मन पता भी न लगा सके थे कि मान्यवर महोदय बिजली के समान कड़कते हुए अपने स्थान पर आ विराजे और अपनी सेना को कई भागों में विभक्त कर शत्रुओं की भूमि का धावा कर दिया। यहां तक कि कई एक धनाढय व्यापारियों तथा नगरों को लूट कर अपने रायगढ़ किले में आ विराजे।

शिवाजी की इस कार्य–शैली के विषय में इतिहास लिखने वालों की कुछ भी सम्मति क्यों न हो परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इतनी कठिनता में भी जिस शीघ्रता और चालाकी से शिवाजी ने युद्ध किया वह अपूर्व बुद्धिमत्ता और वीरता की साक्षी देता है। इतिहास में इस प्रकार की होशियारी के दृष्टान्त बहुत कम देखे जाते हैं जिनके कारण एसे रात दिन नींद न आती थी। अन्त उसने (औरंगजेब) राजा जयसिंह[6] राजपूत और 'दिलेरखां' पठान को एक बड़ी फौज के साथ शिवाजी को आधीन करने के लिए भेजा। शिवाजी जब सामुद्रिक कार्यो से वापस आये तो देखते हैं कि अब मुकाबले की ठन गई औरंगजेब ने भी अपने बल की परीक्षा का पूरा इरादा कर लिया है। सम्पूर्ण मित्रों व अफसरों को रायगढ़ के किले में एकत्रित करके विचार करने लगे। एक दिन शिवाजी को सन्देह हो गया कि श्रीमती भवाजीदेवी (जिसकी वह पूजा करते थे) स्वप्न में यह बतला रही है कि ऐ शिवाजी! तेरे लिए इस हिन्दू सेनापति के सम्मुख विजय प्राप्त होना कठिन है। तू निःसन्देह आज तक मुसलमानों के मुकाबले में विजय प्राप्त करता रहा परन्तु आज तो तेरा ही भाई एक राजपूत तेरे मुकाबले में आ डटा है। शिवाजी! तुमको क्या मालूम था कि मक्कार औरंगजेब ने उसको इसी विचार से भेजा है कि या तो

[6]आमेर (जयपुर) के राजा

www.hindustanbooks.com

वह स्वयं रण में मरेगा अथवा मेरा नाश करेगा। सीधा परन्तु वीर राजपूत (जयसिंह) अपनी वीरता का प्रत्यक्ष सबूत दिखाने के लिए हिन्दुओं को दबाने और उठते हुए राज्य का गला दबाने आया है। यद्यपि इस पिछले विचार से वह जाति का शत्रु और घातक है परन्तु इसके मारे जाने पर भी औरंगजेब की विजय है। इन निर्बल कर देने वाले विचारों ने वीर मरहठा को, जिसकी नसों में राजपूती रक्त किसी कदर बदल चुका था, चिन्ता में डाल दिया। उसकी चिन्ता में डाल दिया और सम्पूर्ण सेना के मुख मण्डल को भी ढीला कर दिया और सम्पूर्ण सेना के मुख मण्डल में उदासीनता छा गई। अन्त में शिवाजी ने सोचा कि तलवार के बदले किसी अन्य ढंग से काम लेना चाहिए इसलिए शिवाजी ने सन्धि की चर्चा शुरू कर दी।

रायगढ़ के पास शिवाजी ने जयसिंह से सन्धि करने के लिए प्रस्ताव भेजा और उधर 'पूर्णधर'[7] किले में वीर मरहठे दिलेरखां और उसके वीर पठानों को जान लड़ाने की शिक्षा दे रहे हैं। उस मरहठा अफसर का नाम (जो किलेदार भी था) 'बाजी प्रभु' था। उसके अधीन मरहठा सेना ने बड़ी उत्तमता से इस बात को सिद्ध कर दिया कि रणभूमि से भाग कर प्राण रक्षा करने या संग्राम से घबड़ा भाग जाने या बिना किसी प्रकार का मुकाबला किये शस्त्र छोड़ देने अथवा किले को खाली कर देने की कलंक कालिमा अपने शिर पर लगाना सम्भव नहीं है।

दिलेर खां किले की तरफ बढ़ा। उधर से 'बाजीप्रभु' ने भी निर्भय हो कर उत्साह और गम्भीरता से युद्ध करने की आज्ञा दे दी।

किले के बाहर जितने स्थान सुरक्षित थे बहुत सी मार काट के बाद भी हाथ से निकल गये। अन्त को दिलेर खां ने आज्ञा दी कि जिस पहाड़ी किले पर निचले किले का बुर्ज है उसको बारूद की सुरंग लगाकर उड़ा दिया जायें किले की सेना ने कई बार अत्यन्त उत्साह और वीरता के साथ सुरंग लगाने वालों को भगा दिया परन्तु अन्त में उन्हें

---

[7]परंधर का किला

एक ऐसा सहारा मिल गया जिससे कि वे गोली और बारूद की मार से बच कर अपना कार्य करने लगे, फिर भी उनको कई बार नाकामयाबी ही हुई। अन्त में उनके भाग्य ने पलटा खाया और किले का बुर्ज उड़ गया। हमला करने वाले लोग नीचे किले में आ गये और अन्दर किले की सेना ऊपर किले में जा रही थी उसने देखा कि शत्रुओं ने अपनी साधारण आदतों से घरों को लूटना और स्त्रियों को पकड़ना आरम्भ कर दिया है। मरहठे वीरों की क्रोधाग्नि भभक उठी और सबों ने निशाना लगा कर गोलियां चलानी शुरू कर दीं। हमला करने वाले शत्रुओं के शव ढेर होने लगे शेष सब अपनी अपनी जान लेकर भाग निकले। उसी समय 'मावलियों' का एक समूह अपने अध्यक्ष के साथ नीचे उतर आया और तलवारें खींच, कसम खाता हुआ शत्रु पर टूट पड़ा, जो जो सामने आया बसको मार गिराया। बचे खुचे अपना प्राण लेकर भाग गये। दिलेर खां की सारी सेना पहाड़ी पर धर कर स्वंय मृत्यु की मूर्ति बन रहे थे दिलेर खा हाथी पर चढ़ा हुआ पहाड़ी के नीचे से सब घटनाएं देख रहा था और नीचे से ही अपनी आज्ञा दे रहा था।

जब दिलेर खां ने देखा कि यहां तो बना बनाया खेल बिगड़ा जा रहा है तो अपने साथी पठानों को लेकर पुकारता हुआ और उत्साह बढ़ाता हुआ आगे बढ़ा। वीर मरहठे यह अच्छी तरह जानते थे कि यदि 'पूर्णधर' किला हाथ से जाता रहा तो दक्षिण भारत में हिन्दुओं का नाम निशान तक न रहने पायेगा। इसी लिये अपने प्राणों को हथेली पर लेकर वे प्रत्यक्ष काल बन गये और युद्व में कूद पड़े। थोड़े समय में लाशों के ढेर लग गये और वे क्षण क्षण में दिलेर खां के समीप पहुंचने लगे। दिलेर खां ने सोचा कि जब तक वीर शिरोमणि जीता रहेगा तब तक उसको आधीन करना या उससे जान बचाना असम्भव हैं निशाने लगा कर तीरों की बौछार शुरू

कर दी। उन तीरों में से एक तीर वीर 'बाजी' की छाती में जा घुसा और बाजी का प्राणान्त हो गया। बस फिर क्या था, उसके साथियों में खलबली मच गई और उन्होंने ऊपर के किले की ओर मुंह किया। दिलेर खां की सेना ने फिर किले के नीचे के भाग में हमला कर दिया, दिलेर खां की सेना ने फिर किले के नीचे के भाग में हमला कर दिया, परन्तु मरहठा सेना अपने अध्यक्षके मर जाने पर भी हताश नहीं हुई। सबों ने पक्का इरादा कर लिया कि जब तक शिवाजी की आज्ञा न आयेगी तब तक किला नहीं छोड़ेंगे और किले के ऊपर से ही जगत्–विध्वंसक आग बरसाने लगे यहां तक कि यह मार दिलेर खां की सेना न सहन कर सकी और किले को छोड़ कर पीछे हट गई। उत्साही दिलेर खां ने समझा कि मेरी दिलेरी कुछ काम न आ सकी। यद्यपि किलेदार मारा गया परन्तु तब भी किला अपने हाथ न आया। यह लोग मरहठा हैं या भूत हैं! किले के उत्तर की और से हताश होकर दक्षिण की ओर बढ़ा। दक्षिण दिशा में स्थित एक पहाड़ी पर 'वहीरगढ़' नाम की एक छोटी सी गढ़ी थी, जहां से किले को हानि पहुंचाई जा सकती थी। उसी गढ़ी पर दिलेर खां ने अधिकार जमाया और गोला बरसाने की आज्ञा दे दी। इस अवसर पर ईश्वरीय सहायता भी किले की रक्षा के लिए आ पहुंची अर्थात् वर्षा आरम्भ हो गई और दिलेर खां की गोलाबारी अपना काम न कर सकी। कई सप्ताह यों ही बीत गये परन्तु किले की दीवारों को कुछ हानि न पहुंच सकी। उधर बाहर से अन्य कोई सहायता न मिलने के कारण सब का उत्साह न्यून होता जाता था। इतने में इन्हें समाचार मिला कि शिवाजी ने सन्धि की शर्ते ठहरा ली हैं अर्थात् जो किला दिलेर खां की दिलेरी से हाथ न आया था, जिसकी रक्षा के लिए हजारों मरहठों ने प्राणों की बाजी लगा रक्खी थी, जिसकी रक्षा में सुप्रसिद्व वीर शेर 'बाजी' मारा गया था। उसी किले को शिवाजी ने एक स्वप्न मात्र से घबड़ाकर एक मिथ्या विश्वास से निर्बल होकर सहज ही शत्रु के हवाले कर दिया। यह सच है कि इसी प्रकार के

मिथ्या विश्वासों का यह फल था कि एक वीर से वीर और जान से खेल जाने वाली एवम् आत्मा को नित्य मानने वाली भारत सन्तान इस्लामी झण्डे का मुकाबला न कर सकी और थोड़े ही समय में दासता की जंजीर पहिन अपने शुभ गौरव, विद्या बुद्वि एवं मान सत्कार को तिलाज्जलि दे बैठी। इन्हीं मिथ्या विश्वासों ने आर्यावर्त को कई बार पहले भी धोखा देकर नष्ट किया। इसी मिथ्या विश्वास ने इस समय शिवाजी की बुद्वि पर पत्थर डाल कर उनके उत्साह को धर दबाया और उनको ऐसी बातों पर विवश किया जिसने उनके गौरव और पुरूषार्थशील जीवन पर एक अमिट कलंक का टीका लगा दिया।

ऊपर लिखा जा चुका है कि शिवाजी ने राजा जयसिंह से सन्धि की शर्ते तय करने के लिए लिखा पढ़ी शुरू की थी। राजा जयसिंह ने शिवाजी के पास लिख भेजा था कि यदि शिवाजी को राजपूत के बेटे की बात पर विश्वास हो तो निर्भय होकर हमारे परस चला आवे। मैं उनको बादशाह से क्षमा करा दूंगा और इस बात की कोशिश करूंगा कि उन्हें शाही दरबार में आदर सम्मान और ऊंचा दर्जा मिलता रहे। जयसिंह की इस प्रतिज्ञा पर विश्वास करके शिवाजी के अपने की खबर पाई और अपने खेमे से बाहर होकर बड़े आदर के साथ उनसे मिला और अपने खेमे में लाकर अपनी दाहिनी तरफ बैठाया। बड़ा सत्कार आदर किया और उत्साह व धैर्य से बात करने लगा। दूसरे दिन शिवाजी दिलेर खां से मिलने गये और अपने हाथ से 'पूर्णधर' किले की सम्पूर्ण तालियां उसे सौंप दी। शिवाजी और जयसिंह के बीच सन्धि की ये शर्ते थी।

(1) जो भूमि मुग़लिया सल्तनत (शाही सरकार) से छीनी थी वह एकदम छोड़ दी जाये।

(2) शिवाजी उन बत्तीस किलों में से जो उन्होंने बनाये थे अथवा छीने थे बीस किले मुग़ल बादशाह को दे देवें और शेष

बारह किले अपने अधिकार में रक्खें। साथ ही जिस किले के साथ जो भूमि जागीर लगी हो वह भी उसी के साथ रहे।

(3) शिवाजी के पुत्र सम्भाजी को जिसकी उम्र 8 वर्ष की थी 5 हजार का पुरस्कार मिले।

(4) शिवाजी को बीजापुर के राज्य पर कुछ अधिकार जागीर का (5 लाख पगोड़ा प्रति वर्ष) प्राप्त हो इन अधिकारों के बदले 3 लाख वार्षिक की किस्त से 40 लाख 'पगोड़ा' की भेंट शाही कोष में देने की प्रतिज्ञा की गई।

राजा जयसिंह ने इन शर्तो को पूरा करने के लिए अपने ऊपर भार लिया। औरंगजेब ने इसके उत्तर में जो पत्र लिखा था उसमें उसने भी शर्ते स्वीकार की थी। 'देशमुखी' अधिकार जो चौथी शर्त में था औरंगजेब ने उसका कहीं जिकर भी नहीं किया था। हां, पहली शर्त अवश्य मान ली थी। इनके सिवाय औरंगजेब ने एक शर्त और बढ़ा दी थी कि 'शिवाजी' के बीजापुर को सर करने में सहायता दें।

इस शर्त को पूरा करने के लिए शिवाजी दो हजार सवार और आठ हजार पैदल सेना के साथ राजा जयसिंह के साथ बीजापुर को आधीन करने में सम्मिलित हुए। शिवाजी और नेता जी पालकर ने इन लड़ाइयों में वह बहादुरी दिखाई कि औरंगजेब ने स्वयं चिट्ठी शिवाजी को लिखी जिसमें उसने शिवाजी की प्रशंसा की और एक बहुमूल्य दुशाला दिया। इसके बाद औरंगजेब ने फिर एक पत्र शिवाजी को लिखा कि मेरी यही इच्छा है कि शाही दरबार में बुलाकर आप का सत्कार किया जाये और फिर आप को आदर के साथ अपने राज्य में लौट जाने की आज्ञा दी जाये। राजा जयसिंह ने शिवाजी को विश्वास दिलाया कि वह स्वंय शिवाजी की स्वतन्त्रता का जिम्मेदार है। इस विश्वास पर शिवाजी ने दरबार में जाने का इरादा किया। इस अवसर पर शिवाजी ने अपने सभी किलों का निरिक्षण किया और किलों के अध्यक्षों तथा अन्यान्य अधिकारियों को आवश्यक आज्ञाएं देकर रवाना हुए।

अध्याय 8

दिल्ली दरबार और शिवाजी

राजा जयसिंह ने शिवाजी के साथ बड़े आदर सत्कार की प्रतिज्ञाएं की थी जिसके कारण शिवाजी अपने मन में यह विचार लेकर दिल्ली को चले थे कि औरंगजेब से दक्षिणी राज्य का पट्टा प्राप्त करेंगे परन्तु जब दिल्ली के समीप आये तो अनका दिमाग घूम गया। यहां और ही रंग के खेल दृष्टिगोचर होने लगे। शानदार और सुसज्जित अगवानी के स्थान पर देखते क्या हैं कि केवल जयसिंह का पुत्र रामसिंह तथा एक और साधारण सा शाही पदाधिकारी आ रहा है। यह देख कर शिवाजी मन में बहुत लज्जित हुए और सोचने लगे बड़ी भूल हुई और मैंने बड़ी भारी हार खाई। उन्हें सन्देह हो गया कहीं ऐसा न हो कि इसी भूल में प्राण भी चला जाये, अतएव मुझे सचेत हो जाना चाहिए। इस प्रकार ज्यों त्यों करके दिल्ली पहुंचे। उधर औरंगजेब ने विचारा कि बस अब क्या है अब तो शिवाजी मेरे काबू में आ गया। यही अवसर है कि दिल्ली का राजकीय गौरव इन्हें दिखाया जाय। उसने सोचा कि शिवाजी ने अपनी सारी आयु जंगलों में काटी है। लड़ाई झगड़े और लूट खसोट के सिवा इसने और कुछ नहीं देखा। आज तक मुग़ल सम्राट का विचार तक इसके दिल में नहीं आया है। अपनी वीरता और चालाकी के भरोसे यह शाही सेना का मुकाबला करता आया है। इसने कभी यह अनुभव नहीं किया कि जिन राजकीय सेनाओं का मुकाबला वह बड़े साहस से करता था उसकी पीठ पर एक ऐसा उच्च और महान् राज्य है जिसके सामने भारतवर्ष के सम्पूर्ण राजा महाराजा सिर झुकाते हैं।

अभिमानी राठौर, चौहान तथा कछवाहे भी बारी बारी से सब सिर झुका चुके हैं। राणा प्रतापसिंह के पदाधिकारी भी

इस राज्य का लोहा मान चुके हैं। कन्नौज, दिल्ली, पाटलीपुत्र, मारवाड़ और मेवाड आदि सम्पूर्ण बड़े बड़े राज्यों का गौरव आदर,सत्कार और धन मुग़ल सम्राट् के चरणों में पहुंच चुका है। जौरंगजेब चाहता था कि शिवाजी सब कुछ अपनी आंखों से देखे और मुग़लिया राज्य के गौरव तथा अपनी हीनावस्था का खूब अनुभव करे ताकि फिर उसे मेरा सामना करने का साहस न हो।

औरंगजेब ऊपरी हृदय से तो साधुपन का दावा रखता था यहां तक कि बाप को गद्दी से उतार कर कैद करना और अन्त में विष देकर मरवा देना,[8] भाइयों के साथ सख्ती करके बहुत बुरी तरह से मारना, हिन्दुओं के साथ दुष्टता का बर्ताव करना आदि सब धर्म की आड़ में किया करता था। माला दिन भर उसके हाथ में रहा करती। नमाज और रोज़ा रोजाना ठीक समय पर किया करता था। गाने बजाने को वह हराम समझता था, यहां तक कि उसके सामने गााना बजाना नितान्त बन्द था। शाहजहां की बनाई गद्दी पर बैठना उचित न समझता था। परन्तु यह एक विशेष अवसर था इस अवसर की विशेषता इसी से प्रकट है कि औरंगजेब ने भी उस साधुपने को थोड़ी देर के लिए तिलांजति दे दी।

बादशाह ने हिजरी सन् 1076 की तारीख ज़ीकाद तदनुसार 1666 ई. में एक बड़ा भारी दरबार किया गया। स्वयं सम्राट् बड़े बड़े अमूल्य मोती तथा अप्राप्य मणियों से बने हुए आभूषण धारण करके शाहजहां की गद्दी पर विराजमान हुआ मानो इस तिथि को ही सर्वप्रथम औरंगजेब पिता की गद्दी पर बैठा। अब तक तो औरंगजेब अपने सम्पूर्ण शत्रुओं को आधीन कर चुका था, एक शिवाजी का ही अधिक खटका था से वह भी आज उसकी सेवा के लिए आ पहुंचा है। दरबारियों के लिए तीन दर्जे सुसज्जित किये गये थे जिनमें से पहले दर्जे में सुनहरी फर्श और दूसरे दर्जे में रूपहली और

[8]शाहजहां आगरे के किले में सहज रूप में मरा था।

तीसरी दर्जे में संगमर्मर का फर्श था। जब शिवाजी दरबार में आये तो उसको सुनहरी फर्श के दर्जे में उन लोगों की श्रेणी में जो पांच हजारी पुरस्कार पाया करते थे, बैठने की आज्ञा दी गई। शिवाजी इस अनादर और अपमान को न सहन कर सके। राजपूती रक्त उनकी नसों में खौलने लगा। अपने से उच्च दरबारियों को सम्बोधन करते हुए बोले कि यदि उनमें मुझ से अधिक योग्यता है तो रण में आयें और अपनी शक्ति का परिचय दें और मेरी वीरता देखें। बादशाह की आड़ लेकर डरपोक और स्त्रियों के समान आभूषण पहिन कर मुझ से उच्च दर्जे में बैठना अत्यन्त लज्जा की बात है।

शिवाजी की यह ललकार सुनते ही सम्पूर्ण दरबारी चकित हो गये कि यह मरहठा क्या अनर्थ कर रहा है? भारत के सम्राट् सामने बैठा है, चारों ओर मुसलमान पदाधिकारी अपने अपने स्थान पर बैठे हैं, सेना के लाखों मनुष्य मात्र नेत्र संचालन करने पर ही अपनी चमकीली औी तीक्ष्ण तलवारों को खनखनाने के लिए उद्यत हैं और यह महात्मा अकेला बिना किसी प्रकार के मित्र और सहायक के केवल चन्द साथियों के भरोसे पर इस प्रकार अण्ड बण्ड बक रहा है।

परन्तु सल्तनत मुग़लिया के भरे दरबार में इस प्रकार का साहस दिखाने का यह पहला मौका न था। अभी अधिक समय नहीं बीता था और कदाचित् उस घटना को अपनी आंखों देखने वाले कुछ दरबारी भी विद्यमान थे। वीर केशरी 'अमरसिंह राठौर' ने शाहजहां के सामने भरे दरबार में सलावत खां का सिर उड़ा दिया था और बादशाह डर के मारे भाग कर स्वयं जनानख़ाने में प्राण बचाने के निमित्त जा घुसा था। वंश परम्परा से तो शिवाजी की नाड़ियों में भी पवित्र राजपूती रक्त दौरा कर रहा था। कहते हैं कि औरंगजेब ने यह तमाशा देखकर अनदेखा कर दिया, सिवाय मुस्कुराने के अन्य कोई बात मुंह से न निकाली और दरबार बर्खास्त हो गया। उस दिन से शिवाजी कभी दरबार में नहीं आये और औरंगजेब को

सलाम किया। हां ! दूतों की मार्फत मेल मिलाप की बातें करते रहे। औरंगजेब दिल ही दिल में अपनी चालों पर खूब प्रसन्न हो रहा था। जिस समय शिवाजी अत्यन्त क्षुब्ध और क्रुद्व होकर दरबार में गरज रहे थे उस समय औरंगजेब ने यह विचार कर हंस दिया कि यह अब भी 'शेर की कन्दरा में आकर गुर्राता है' क्या उसे यह मालूम नहीं कि जीवन की घड़िया समाप्त हो गई हैं और अब वीरता दिखलाने का अवसर हाथ न आवेगा। शिवाजी जीवन से तो हाथ धो ही चुके थे अब तो केवल भाग्य की परीक्षा कर रहे थे कि शायद किसी प्रकार इस जाल से निकल जायें।

दूसरे दिन से औरंगजेब ने शिवाजी के निवास स्थान पर कड़े पहरे का प्रबन्ध करने का प्रबन्ध कर दिया। जब कभी शिवाजी शहर में घूमने जाते थे तो पहरेदार साथ रहते थे मानो वे एक प्रकार से नजरबन्द कैदी की हालत में थे।

एक अंग्रेज इतिहासकार ने लिखा है कि औरंगजेब ने शिवाजी को कत्ल करने का प्रबन्ध तो कर लिया, परन्तु कुंवर रामसिंह (जो राजा यशवन्तसिंह का पुत्र था) जब ख़बर मिली कि औरंगजेब ऐसी कुत्सित चालें चलने का विचार कर रहा है तो उसने सम्पूर्ण समाचार शिवाजी को जा सुनाया । जब यह समाचार शिवाजी को मालूम हुआ तो वे निकलने का उपाय करने लगे और बीमारी का बहाना करके इलाज करवाना आरम्भ कर दिया। थोड़े दिनों के बाद यह बात प्रसिद्व कर दी कि अब बीमारी दूर हो गई है जिस की खुशी में अमीरों और उमरावों तथा बड़े बड़े पदाधिकारियों के यहां मिठाइयों के टोकरे भेजने शुरू कर दिये ऐसी टोकारियों में जिनमें मनुष्य बड़े आराम से छिप कर बैठ सकता था मिठाई भर भर कर मन्दिरों और मस्जिदों को भेजी जाने लगीं।

एक दिन अपने एक साथी को जो सूरत शक्ल और मुखड़े की बनावट में शिवाजी से बहुत कुछ मिलता जुलता था अपनी सोने की अंगूठी पहना कर अपनी चारपाई पर लिटा

दिया और आप एक टोकरे में (जो मिठाई से भरी थी) बैठे और दूसरी में अपने पुत्र सम्भाजी को (जो संग ही था) बिठाकर शहर से बाहर निकल गये। दिल्ली से बाहर घोड़े पर सवार हो दूसरे दिन मथुरा पहुंचे। यहां पर इनका एक विश्वासपात्र मित्र नेताजी और कई एक ब्राह्मण शिवाजी की राह देख रहे थे। मथुरा पहुंच कर शिवाजी ने दाढ़ी मूंछ मुंड़ा दी और शरीर पर विभूति रमा एक साधु का भेष बना लिया। रूपया पैसा और हीरा मोती, ये सब एक खोखली छड़ी में रखकर रातों रात प्रयाग पहुंचे । प्रयाग में उन्होंने अपने बेटे सम्भाजी को जो उस समय बालक था एक दक्षिणी ब्राह्मण को सौंप दिया और कठिन चेतावनी दे दी कि जब तक मेरे हाथ की लिखी चिट्ठी न आवे तुम इसको मत भेजना। इस प्रकार अपना बोझ हलका करके शिवाजी उसी साधु के वेश में काशी की ओर चल दिये। जिस समय शिवाजी प्रयाग से रवाना हुए उस समय प्रयाग से एक गोल (झुण्ड) वैरागियों गुसाइयों और साधुओं का काशी जा रहा था। इन्हीं के साथ शिवाजी भी चल पड़े। रात में यह झुण्ड बढ़ता जा रहा था कि एक स्थान पर एक मुसलमान सेना अध्यक्ष ने उन्हें पकड़ लिया और तलाशी की आज्ञा दी। एक दिन और एक रात शिवाजी की जान बड़े संकट में पड़ी रही। शिवाजी को यह चिन्ता हुई कि ईश्वर न करे, यह सम्पूर्ण परिश्रम बेकार ही जाय और दिल्ली के बजाय काशी में एक दुष्ट मुसलमान के हाथ मारा जाऊं। दिल में विचारा कि ऐसा काम करना चाहिए जिससे या तो इधर या उधर। यदि पहरेदार कुछ लालच में जा जाये तो काम बन जाये। यह विचार कुछ लालच में जा जाये तो काम बन जाये। यह विचार कर तुरन्त फौजदार के सामने जा खड़े हुए और चुपके से कहा कि मैं शिवाजी हूं एक ओर मैं हूं और दूसरी और बहुमूल्य ये दो हीरे हैं। यदि हीरे लेने की इच्छा है तो मुझे छोड़ दो अन्यथा मैं तो तैयार ही हूं, जो चाहे सो कर, जीता पकड़ ले या सिर काट ले और औरंगजेब के पास भेज दे परन्तु यह ख्याल रहे कि इस अवस्था में हीरे तेरे

हाथ न लगेंगे। शिवाजी ने सोचा कि यदि यहां एक रात और रहा तो प्रातःकाल तक शाही सेना अपने कर्मचारियों के साथ पहुंच जायेगी और फिर जान से हाथ धोना पड़ेगा। यदि यह चाल चल गई तो अच्छा, वरना मरना तो है ही। शिवाजी ने अपनी जान हथेली पर रख कर जो चाल चली वह पूरी उतर गई। मुसलमान फौजदार ने लालच में आकर हीरे ले लिये और शिवाजी को छोड़ दिया। बस फिर क्या था शिवाजी अत्यन्त फुर्ती के साथ रात कूच करते हुए काशी आ पहुंचे और फिर काशी से बिहार पटना और चांदा के रास्ते दक्षिण आ पहुंचे।

उधर दिल्ली का वृत्तान्त सुनिये। एक गुप्तचर ने औरंगजेब को खबर दी कि शिवाजी भाग गया। सम्राट् ने कोतवाल से उत्तर मांगा, कोतवाल ने लिखा कि उसके चारों ओर पहरा बैठा है और शिवाजी मौजूद है। सम्राट् को शान्ति हो गई परन्तु फिर एक गुप्तचर ने खबर दी कि शिवाजी भाग गया। सम्राट् ने फिर जवाब मांगा, अतः कोतवाल स्वयं शिवाजी के स्थान पर आया और शिवाजी के पलंग पर उस मनुष्य को सोता पाया जो शिवाजी की अगूंठी पहिने हुए था। उसने फिर सम्राट् को वही उत्तर दिया। परन्तु तीसरे गुप्तचर ने शिवाजी के भागने की खबर फिर औरंगजेब को दी कहा कि कोतवाल की रिपोर्ट झुठी है। इस तीसरी खबर पर खूब अच्छी तरह से जांच की गई तो भेद खुल गयाथ तत्काल सब सूबेदारों, हाकिमों, सेनापतियों तथा फौजदारों के नाम आज्ञा पत्र भेजे गये कि शिवाजी जहां भी मिले तुरन्त पकड़ कर दरबार में उपस्थित किया जाये। अत्यन्त शीघ्रता से दूत चारों तरफ भेजे गये परन्तु पिंजड़े से निकला हुआ शेर फिर हाथ न आया और औरंगजेब हाथ मलता रह गया।

शिवाजी तो किसी प्रकार अपनी जान बचाकर निकल भागे परन्तु बेचारे रामसिंह पर शाही आपत्ति आ पड़ी। रामसिंह को अपनी प्रतिज्ञा पूर्ति का दण्ड भुगतना पड़ा। उधर शिवाजी के पिता का बीजापुर की लड़ाई से लौटते समय

रास्ते में देहान्त हो गया। यदि शिवाजी भी औरंगजेब के हाथ से न निकलते तो अवश्य मारे जाते और औरंगजेब की चाल पूर्ण रूप से सफल होती परन्तु शिवाजी के भाग्य में कुछ और ही होनहार था। जयसिंह शिवाजी की सेवा करते करते मरे, जिसकी मौत से औरंगजेब को अपने विचारों के अनुसार एक बलवान् शत्रु से छुटकारा मिला। परन्तु शिवाजी ने औरंगजेब के हाथ से छुटकारा पाकर एक महान् राज्य की नींव डाली जिसने मुग़ल सल्तनत को भारतवर्ष से उखाड़ फेंका।

जब शिवाजी दिल्ली दरबार को प्रस्थान कर रहे थे तो जयसिंह बीजापुर से मुकाबला कर रहे थे। शिवाजी का एक वीर अफसर तानाजी पालकर इसके साथ था और बड़ी वीरता से अपने स्वामी की तरफ से लड़ रहा था। शिवाजी के देहली से भाग आने पर औरंगजेब ने तानाजी को (जिसको मुसलमान इतिहासकारों ने नत्थूराम नाम से पुकारा है) पकड़ने की आज्ञा दी। 'तानाजी' कैद करके दिल्ली लाया गया और उसको मुसलमान होने के लिए मजबूर किया गया। उसे जबरदस्ती मुसलमान बनाकर कुल्ली खां नाम दिया गया । इधर 'कुल्ली खां' अवसर पाकर भाग गया और शिवाजी से जा मिला।

अध्याय 9

शिवाजी का अभ्युदय

दक्षिण पहुंच कर शिवाजी ने फिर उन प्रान्तों को लौटाने का प्रयत्न किया जो उन्होंने मेल मिलाप के समय राजा जयसिंह को दे दिये थे। बहुत से किले तो सुगमता से हाथ आ गये, कई एक के लिए युद्व भी करना पड़ा। परन्तु थोड़े ही समय में सतारा, पनाला और राजगढ़ जैसे प्रसिद्व किले भी वापस आ गये। वह सम्पूर्ण भूमि जो राजा जयसिंह को दी थी पुनः शिवाजी की आधीनता में आ गई। यहां तक कि शिवाजी ने एक बार फिर सूरत पर (जो मुग़लों के अधीन था) धावा किया और लूट मार करके बहुत सा धन प्राप्त किया। जब यह खबर औरंगजेब को मिली तो वह बहुत क्रोधित हुआ। दिलेर खां और शुजाअत खां को एक बहुत बड़ा सेना देकर शिवाजी को दण्ड देने के लिए भेजा।

यहां यह बात याद रखनी चाहिए कि औरंगजेब ने कभी किसी का विश्वास नहीं किया। अकबर ने तो हिन्दू राजाओं को उनकी चापलूसी, विश्वास और एहसान से अपना सेवक बनाया था और उन्हीं की सहायता से सारे भारतवर्ष पर विजय प्राप्त करके मुग़ल राज्य को पक्का किया था।

ज्हांगीर और शाहजहां ने भी न्यूनाधिक रूप से अकबर की ही नीति से काम किया था और हिन्दुओं से सम्बन्ध स्थिर रक्खे थे। यद्यपि शाहजहां के समय में इन सम्बन्धों का रूख बदल गया था परन्तु औरंगजेब ने तो बिल्कुल रंग ही पलट दिया। औरंगजेब हिन्दू राजाओं को अत्यन्त घृणा की दृष्टि से देखता था परन्तु साथ ही इस बात का भी यत्न करता था कि वे खुले रूप से इसके शत्रु न बन जायें। औरंगजेब हिन्दू राजाओं को प्रायः ऐसे स्थानों में भेजा करता था जहां से उनके जीते जी आने की आशा नहीं रहती थी। इसके सिवा एक और अविश्वास

मनहानि की गई। राजा जयसिंह दक्षिण की लड़ाई से लौट कर न आ सके अर्थात् रास्ते ही में मर गये। अब एक और राजपूत वीर की बारी आई कि वह औरंगजेब के हाथ लगे तथा उसके विचारों को पूरा करने का कारण बने। राजा जयसिंह की मृत्यु के बाद शाहजादा आलम को दक्षिण का सूबेदार नियत किया गया। दिलेर खां और खानजहां को खास तौर पर शाहजादे की अधीन शिवाजी के प्रतीकार के लिए नियत किया।

कई एक इतिहासकारों का मत है (औरंगजेब जैसे कपटी मनुष्य के लिए कोई आश्चर्य की बात नहीं है) कि शाहजादा मुअज्जम को अपने पिता से यह आज्ञा मिली थी ि कवह दक्षिण में दिखावे मात्र के लिए ही सम्राट् के विरूद्ध विद्रोह फैलावे। शिवाजी और अन्य हिन्दू राजाओं को मिलाकर औरंगजेब के हवाले करे। शाहजादा मुअज्जम ने ऐसा ही किया। दक्षिण पहुंचकर शिवाजी से अत्यन्त प्रेमभाव से मिला और कुछ लालच दिया। औरंगजेब की ओर से शिवाजी को राजा की पदवी भी दी गई। सम्भाजी का पुरस्कार भी स्थिर कर दिया गया। इसके सिवा बरार में शिवाजी को कई प्रान्तों की जागीर भी दी गई। यहां तक कि पूना चाकन तथा सूपा के प्रान्त भी लौटा दिये गये। शिवाजी ने शाहजादा मुअज्जम से परोक्षतया पत्र व्यवहार से सहायता के लिए प्रतिज्ञा की परन्तु खुले तौर पर उसके पास आने से साफ इन्कार कर दिया।

शिवाजी एक बार मुग़लराज्य के धोखे में अपने प्राण संकट में डाल चके थे। अब यह कभी सम्भव नहीं था कि उन जैसा विचाराशील मनुष्य फिर अपने आप को आपित्त में फंसा देता। परन्तु शाह मुअज्जम की सेवा में अमीर अफसर जिसमें बहुत से हिन्दू भी शामिल थे, इस बनावटी चक्रव्यूह में आ गये जिसका यह फल हुआ कि वे लोग बहुत से छल एंव कपटों के साथ औरंगजेब को सौंप दिये गये। औरंगजेब ने उनमें से कितनों को मुसलमान बना डाला और जो बचे रहे उन्हें औरंगजेब जैसे बलवान् सम्राट् ने खुले तौर पर मार डाला।

अध्याय 10

बीजापुर और गोलकुण्डा राज्य भी शिवाजी को कर देने लगे

ऊपर लिखा जा चुका है कि शाहजी बीजापुर के दरबार में नौकर थे पर शिवाजी ने अपने जीवन में वास्तविक काम आरम्भ किये और हाथ में तलवार लेकर अपने भुजबल की सहायता एवं देश को मुसलमानों के पंजे से छुड़ायें और मरहठा राज्य की नींव डालें। पिछले पृष्ठों में लिखे सम्पूर्ण वृत्तान्तों ने जो शिवाजी की 40 वर्ष की अवस्था तक प्रकट हुए। यह किसको ज्ञात नहीं कि शाहजी का पुत्र शिवाजी इस प्रकार के साहस, वीरता और पुरूषार्थ का सबूत देगा। किन्तु 16 वर्ष के शिवाजी को देख कर किसी मनुष्य को यदि कोई विचार पैदा भी हुआा होगा तो केवल इतना ही कि वह अपने पिता से अधिक बलशाली और महामान्य होगा। कदाचित् किसी का तो यह भी विचार हो कि इस प्रकार के उजड्डपन की बातें, राजद्रोह, लूट खसोट की आदतें उसके विध्वंस का कारण होंगी परन्तु यह बात तो शायद किसी को भी बुद्वि में न समाई होगी कि 25 वर्ष की अवस्था के पूर्व का एक लड़का एक अच्छे राज्य का स्वामी बनेगा। दिल्ली का मुग़ल दरबार उसके सामने सन्धि की शर्ते पेश करेगा और बीजापुर तथा गोलकुण्डा के वंश उसको कर देना स्वीकार करेंगे। तात्पर्य यह कि थोड़े ही समय में शिवाजी ने जो कुछ कर दिखाया, वह सब लोगों की आशाओं से बढ़ कर था। शिवाजी को कई बार सफलता हुई, साथ ही निष्फलता भी हुई परन्तु निष्फलता सदैव उनके लिए लाभप्रद होती गई वह साहस तथा पुरूषार्थ के ऐसे धनी थे कि कभी निष्फलता में भी हानि

नहीं उठाई। परमात्मा सदा उनकी मदद करता था। उनका भाग्य उत्तम था। उनकी कीर्ति को पताका और जाति का गौरव उनके देश की भाग्यशीलता का निशान था। मैत्री से वह सभी को अधीन कर लेते थे– वाणी से वह लोगों के हृदयों को को खींचते थे– प्रेम और स्नेह से वह दूसरे को अपना प्रेमी बना लेते थे। मनुष्यों की वह पूरी पहिचान रखते थे परन्तु गुण की गुण की पहचान करने में तो कमाल ही करते थे। शत्रुओं को मित्र और विश्वसनीय बना लेते थे। बहुत से योग्य, वीर और साहसी मनुष्य उनके साथ रहे, लड़े और इनमें से बहुत से उनकी उच्च बुद्विमत्ता के कायल होकर उनके ऊपर प्राण निछावर करने वाले सिपाही तथा अफसर बने। शिवाजी की सफलता का यही एक मुख्य कारण था। सन् 1667–68 में सुलतान मुअज्जम तथा शिवाजी में घनिष्ठ मित्रता रही। सन् 1668 के मध्य बीजापुर के बादशाह आदिलशाह ने दिल्लीश्वर से सन्धि कर ली और साथ ही शिवाजी से सन्धि करके तीन लाख रूपया वार्षिक कर देना स्वीकार कर लिया। इस प्रकार आदिलशाह ने 5 लाख रूपया वार्षिक स्वीकार कर के सुलह कर ली। सन् 1667 ई. तक शिवाजी अपने राज्य के प्रबन्ध में लगे रहे जिसके कारण लगभग दो वर्ष तक किसी के साथ कोई युद्व नहीं हुआ।

अध्याय 11

मुग़ल सम्राट से मुकाबला—सिंहगढ़ की लड़ाई ताना जी का बलिदान

सन् 1670 ई. में औरंगजेब ने दक्षिण के सूबेदार को दूसरी आज्ञा भेजी कि वह शिवाजी तथा उनके उच्च पदाधिकारियों को गिरफ्तार करे। जिस समय शिवाजी को यह समाचार मिला तो एसी क्षण उन्होंने अपनी ओर से केवल रक्षा ही के लिए नहीं वरन युद्व की तैयारी के लिए भी कमर कस ली। पूर्व इसके कि उनका शत्रु चढ़ाई करे, शिवाजी ने अपने अफसरों को सिंहगढ़ और पूर्णधर किलों को वापस लेने की आज्ञा दे दी। औरंगजेब ने अपने अफसरों से पूछा कि वह कौन सा सिंह है जो इस खोये हुए 'सिंहगढ़' को शत्रुओं से वापस ले सकता है। गीदड़ों से 'सिंहगढ़' का खाली करा लेना तो बड़ी बात न थी परन्तु शूरवीरों शेरों को निकाल कर खोये हुए 'सिंहगढ़' को प्राप्त कर लेना एक असाधारण साहस का काम था। श्री तानाजी के सिवाय और किसी का साहस न हुआ ि कइस बीड़े को उठाये। उसने तलवार हाथ में उठा कर इस सेवा को पूरा करने की आज्ञा मांगी परन्तु शर्त यह थी कि मेरा सगा भाई और एक हजार मावली योद्वा जिनको मैं स्वयं छांट लूं, मुझे दिये जायें।

याद रखना चाहिए कि यह किला बड़े दुर्गम स्थान पर था। पहाड़ों की श्रेणी के पूर्वीय किनारे पर अत्यन्त ऊंचे स्थान पर यह किला बनाया गया थां पूर्व और पश्चिम की ओर तो ऊंची चोटियां थी जहां पर मनुष्यों का आना जाना अत्यन्त कठिन था। यह किला एक ऐसे दृढ़ टीले पर था जिसकी सीधी चढ़ाई आध मील से कम किसी हालत में न

थी। यह टीला पृथ्वीमण्डल पर मानो एक स्थाणु के समान था–आधामील की चढ़ाई के ऊपर चालीस फीट तक काले पत्थर का टीला है जिसके ऊपर एक दृढ़ पत्थर की त्रिकोण दीवार है, जिसमें स्थान स्थान पर बुर्ज हैं। इस बाहरी दीवार के अन्दर किला है जो बनावट में त्रिभुजाकार है। किले के अन्दर का मण्डल दो मील से भी अधिक है।

किले के ऊपर पूर्व की ओर मनीरा का सुन्दर तथा चित्ताकर्षक पहाड़ी दृश्य है। दक्षिण की ओर एक बड़ा भारी मैदान दिखलाई देता है जिसके अगले भाग में पूना शहर की आबादी देख पड़ती है। उत्तर और पश्चिम की ओर जहां तक दृष्टि जाती है पर्वत दिखाई देते हैं, यहां तक कि आकाश का नीला रंग पहाड़ी बादलों की रंगत में मिल कर धूम समूह बन जाता है, जिसकी ओट में बस्ती अदृश्य हो जाती है। इसके पास पूर्णधर का किला ठीक उस स्थान पर है जहां से पहाड़ी सिलसिले का रूख दक्षिण की ओर घूम जात है । शिवाजी ने प्रत्येक अवस्था को दृष्टिगोचर करके इन दोनों किलों को बनवाया था और जिस समय जयसिंह ने सुलह की थी उस समय दोनों किले अभी मुसलमानों ही के हाथ में थे और मुसलमानों की ओर से यहां राजपूत सेना नियत की गई थी इस युद्ध में 'तानाजी' ने जो वीरता एवं साहस अपने बहादुर सिपाहियों के साथ दिखायी उसे उक मराठा कवि ने पद्य में वर्णन किया है। मराठे लोग इस गीत को बड़े प्रेम और स्नेह के साथ गाते हैं। महराष्ट्र का बच्चा बच्चा इस जातीय विजय के इस अद्वितीय गीत से परिचित है। इतिहासकारों तथा इस जातीय गीत में कहीं कहीं विरोध है परन्तु इस गीत में तैयार एवं घेरे की हालत इस विचार से लिखी गई है ि कवे सब के सब चित्ताकर्षण एवम् उत्तम उत्तम शिक्षाओं से भरे हैं। हम उनमें से कुछ आवश्यक और बड़ी बातें यहां पर लिखते हैं।

इस किले के घेरे के विषय में यह कथा प्रचलित है कि उसके विजय करने का विचार सब से पहिले शिवाजी की माता जीजाबाई के दिल में पैदा हुआ था। शिवाजी 'रायगढ़' में थे परन्तु जीजाबाई के दिल में पैदा हुआ था। शिवाजी 'रायगढ़' में थे परन्तु जीजाबाई 'प्रतापगढ़' में रहा करती थी। एक दिन महल के ऊपर खड़ी थी कि दूर से सिंहगढ़ किले के बुर्ज दीख पड़े। बस फिर क्या था, दिल में जोश उमड़ आया और सोचने लगी कि जब तक मेरे बेटे के पास यह किला न होगा तब तक राज्य अधुरा ही है। इस विचार को लेकर महल से नीचे उतर आयी और एक दूत को बुला कर शिवाजी के पास पत्र भेजा कि शीघ्र आओ, तुम को माता जी याद करती हैं।

शिवाजी इस आज्ञा को सुनकर तत्काल 'प्रतापगढ़' पहुंचे। उधर माताजी भी तो पुत्र की प्रतीक्षा कर रही थी' कि कब शिवाजी आये! इसी बहाने माता जीजाबाई ने सामने चौसर बिछा रक्खा था कि जिसे चौसर खेल रही हैं। इसी बीच शिवाजी आ गये, वरना करते हुए माता के पास पहुंचे। माता ने स्नेहवश उन्हें गोद में लिया और कहा बेटा! टाओ चौसर की बाजी खेली जाय। शिवाजी ने कहा, मुझे इतनी शीघ्रता से क्यों बुलाया गया है? शीघ्र बताइये जिससे आज्ञा का पालन कर सकूं। माता ने एक बार चौसर खेल लें तब बताऊंगी। बेटे ने आज्ञा का पालन धर्म समझ कर कहा बहुत अच्छा। आप पहले पासा डालें। माता ने कहा नहीं बेटा, राजा की विद्यमानता में कोई अगवानी नहीं कर सकता है क्योंकि यह राजपदवी का अधिकार है। मर्यादा के लिए शिवाजी ने पासा डाला और वह अच्छा निकलां शिवाजी ने कहा माता जी मैं हारा और आप विजयी हुई, जो कुछ आज्ञा हो भेंट करूं। किले, माल, धन सब कुछ विद्यमान है जो चाहिए ले लीजिए।

माताजी–बेटा ! न तो तेरे किले की मुझे चाह है न माल धन और न किसी अन्य वस्तु की। केवल एक ही वर मांगती हूं और प्रतिज्ञा करो कि पूर्ण करोगे?

शिवाजी–माताजी अच्छा! अब आज्ञा दीजिए।

माताजी–बेटा! क्मर बांधो, तलवार म्यान से निकालो। यह सिंहगढ़ का किला मेरे नेत्रों में खटक रहा है। उस पर विजय प्राप्त कर माता के हृदय को शान्ति दो। जब तक वह किला फतह न करोगे तब तक तुम्हारा राज्य और तुम्हारी शक्ति अधुरी है। माताजी की यह बात सुन कर शिवाजी पर वज्रपात हुआ, कान्ति उड़ गई। उदासीनता छा गई और कहा–

माताजी ! यह बड़ा कठिन वर है। यह किसका साहस है कि शूरवीर उदयभानु का सामना कर सके। माताजी ! जो कुछ मेरा है वह आप ले सकती हैं परन्तु जो वस्तु मेरी नहीं उसके विषय में मैं कैसे प्रतिज्ञझ कर सकता हूं।

माताजी– (अत्यन्त क्रुद्व होकर) बेटा! याद रक्खो, माता का शाप बहुत बुरा होता है। तेरा सम्पूर्ण राज्य मेरे शाप से भ्रष्ट हो जायेगा, तूने मुझे वचन दिया है सो अब उसका पालन करना तेरा धर्म है।

माताजी की अटल प्रतिज्ञा को सुन कर शिवाजी उठ खड़ा हुआ और आज्ञा दी, माताजी के वास्ते पालकी लाओ। पालकी पर आरूढ़ हो माताजी रायगढ़ की ओर रवाना हो गई।

जीजाबाई! तू धन्य है! तेरा गर्व धन्य है! तेरी जैसी माता हो तो शिवाजी जैसा पुत्र क्यों न पैदा हो? तेरी छाती का दूध पिलाने वाली हो तो शिवाजी जैसा शूरवीर हिन्दुओं के खोये हुए गौरव को दुबारा लाकर अपने उन्नत ललाट पर क्यों न राजतिलक लगवाये? तेरी जैसी गोद हो तो शिवाजी जैसा पुत्र केहरी जैसी बेटे ने धर्म की रक्षा की, जाति की रक्षा की, तेरे लिए और अपने लिए यश की धारा बहा दी। हिन्दू इतिहासवेत्ता लिखते हैं कि शिवाजी भवानी का

www.hindustanbooks.com

पूजक था—और श्रीमती भवानीदेवी ने उसकी पूजा से प्रसन्ना हो उसको वरदान दिया था। सच मानिये तो जीजाबाई ही शिवाजी के लिए जीती जागती भवानीदेवी थीं वे बुद्धि की धनी थी और साहस में भी कम न थी। ऐसी देवी और ऐसा पुजारी धन्य है। देखो, जिस चौसर ने महाभारत का युद्ध करा दिया और सम्पूर्ण वीरों का नाश करा दिया उसी चौसर ने इस अवसर पर आज जीजाबाई की सहायता की।

शिवाजी अपनी माता के साथ किले में न पहुंचे। माता तो महल में चली गई और शिवाजी दरबार में जा विराजे। दरबार को आज्ञा दी कि सम्पूर्ण अमीर—सूबेदार शासक तथा मित्रों को जो किले में मौजूद थे, माता जी की आज्ञा सुनाई जाये जिसे सुन कर सब सन्न रह गये। किसी ने इस काम को पूरा करने के लिए बीड़ा नहीं उठाया। अन्त में शिवाजी ने कहा कि कम से कम एक मनुष्य मेरे राज्य में अवश्य है जो कि इस कार्य को पूरा करेगा। दूत को बुलाकर आज्ञा दी, जाओ। और तानाजी को समाचार सुनाओ कि शिवाजी ने तुम्हें याद किया हैं आज के चौथे दिन तक तानाजी अवश्य यहां पहुंच जावें।

यह वही तानाजी हैं जो अफजलखां की घटना के समय शिवाजी के साथ में था। शिवाजी की आज्ञा पाते ही दूत तुरन्त रवाना हो गया और तानाजी की जागीर में जा पहुंचा। क्या देखा कि चारों तरफ आनन्द और प्रसन्नता के दृश्य दिखलाई पड़ रहे हैं। पूछने पर ज्ञात हुआ कि तानाजी के पुत्र 'रायबा' के यज्ञोपवीत तथा विवाह संस्कार की तैयारियां हो रही हैं। दूत ने सम्पूर्ण बन्धुओं तथा सेनाध्यक्षों के सामने तानाजी को शिवाजी का पत्र दिया। जिस समय तानाजी ने शिवाजी का पत्र पढ़ा तो तानाजी का चचा शेलरजी इस प्रकार बोल उठा। तानाजी! सिंहगढ़ का विजय करना सुगम नहीं है, जितने भी मनुष्य उस किले पर चढ़ कर गये कोई जीवित नहीं बचा। मुझे अच्छा नहीं मालूम होता है कि तुम अपने पुत्र के विवाहोत्सव को त्याग

कर इस युद्व में जाओ। मेरा मस्तक ठनक रहा है तुम जीते जी युद्व से वापस नहीं आ सकोगे।तानाजी–चाचाजी! आप यह क्या कहते हैं? क्या मैं क्षत्रिय नहीं हूं। क्या मैंने क्षत्राणी का दूध नहीं पिया जो आप मुझे इस तरह मौत से डराते हैं। जिस समय तानाजी इस प्रकार कह रहे थे उस समय उनका इकलौता पुत्र सामने आ पहुंचा। उसने पुत्र को पास बुलाकर और धैर्य देकर कहा कि मैं राजा शिवाजी की सेवा में जाता हूं और सात दिन का अवकाश लेकर तेरे विवाह के लिए लौट आऊंगा। तत्पश्चात् पुनः युद्व में चला जाऊंगा। तानाजी, शिवाजी की आज्ञा पालन करने के लिए अपने मण्डल की सम्पूर्ण लड़ने वाली जातियों को एकत्र करके रायगढ़ की ओर चल दिया।

इस विषय में एक कवि ने लिखा है कि यह बारह हजार की सेना के लोग पूरे बनवासी थे जो अपने अपने कम्बल कन्धों पर रख कर तथा अपने अपने खेत छोड़कर तानाजी के चारों ओर जमा हो गये थे। न तो उनके पास में वस्त्र थे न अस्त्र थे। किन्तु उनकी लाठियां ही उनके लिए शस्त्र थी। जब गांव से निकले तो शकुन बहुत बुरे दिखाई देने गले। वृद्व जी को संदेह हो गया, इसलिए तानाजी से कहने लगा कि शकुन तो ठीक नहीं है। लौट चलो, परन्तु वीर तानाजी ने कहा कि चाचा जी! मैं शकुन वकुन कुछ नहीं जानता, मेरा राजा भाग्य का बड़ा धनी है। उसक काम में कोई मन्द शकुन हो ही नहीं सकता है। आप पीछे लौटने का नाम न लें, सीधे मार्ग पर आ जायें।

अपनी सेना को साथ ले तानाजी यात्रा करता हुआ रायगढ़ के किले के सामने जा पहुंचा। दूर से जीजाबाई ने देखा तो उनके मन में यह विचार पैदा हो गया कि शायद कोई शत्रु चढ़ आया है। यह सोच कर जल्द शिवाजी को बुला भेजा और सामना करने के लिए आज्ञा दी। जब शिवाजी ने ध्यान देकर देखा तो ज्ञात हुआ कि यह शत्रु नहीं बल्कि

मित्र है। माताजी को समझाया कि तानाजी अपनी सारी शक्ति को द्वार पर छोड़ स्वयं किले के अन्दर आ पहुंचा है।

यह बात हो ही रही थी कि तानाजी शिवाजी के सम्मुख आ उपस्थित हुआ और वन्दनादि शिष्टाचार के बाद बोला–हे राजन्! मैंने कौन सा अपराध किया है जो मुझे ऐसे समय में बुलाया गया जब कि मैं पुत्र का विवाह करने में संलग्न था। क्या कारण है जो मुझ से ऐसी कड़ाई से काम लिया गया। शिवाजी ने कहा–तानाजी, मैंने तुम्हें नहीं बुलाया किन्तु माताजी ने तुम्हें याद किया है। उधर माताजी बैठी हुई सब बातें सुन रही थी। चकित हो गई कि शिवाजी ने अपने ऊपर की जिम्मेदारी मेरे ऊपर टाल दी। देखें मुझे कैसे सफलता प्राप्त होती है। तत्काल अपने महल में चली गई और चांदी के एक थाल में दीपक जलाकर ले आई। इतने में तानाजी भी आ पहुंचां माता जी ने थाली तानाजी के शिर के ऊपर घुमा कर खुले मस्तक हो आर्शीवाद दिया, बेटा! चिरन्जीव रहो, तानाजी ने पगड़ी उतार कर माताजी के पैरों पर रख दी और बोला– जो आज्ञा हो उसको पूरा करने के लिए सेवक उपस्थित है। जीजाबाई ने कहा कि ऐ मेरे सरदार! बुढ़ापे में एक यही अभिलाषा रह गई है कि सिंहगढ़ को विजय किया जाए, क्योंकि शिवाजी और तानाजी जेसे की माता कहा कर भी यदि यह किला हाथ न आया तो मृत्युपर्यन्त शोक बना रहेगा। तानाजी यह शब्द सुनते ही अपने स्थान पर लौट आया। चाचा शेलर जी ने पूछा कि कहो कैसी गुजरी? तानाजी ने उत्तर दिया कि चाचाजी क्या कहूं, माताजी विजयी हुई और मैं हार गया। अब तो मैं सीधा सिंहगढ़ जाता हूं। शेलर ने जवाब दिया, बहुत अच्छा बेटा, जाओ। जाने के पहले आओ मिल कर भोजन तो कर लें। एक कवि ने यह वृत्तान्त इस तरह लिखा है कि शिवाजी की माता ने स्वयम् अपने सामने सम्पूर्ण सेना को भोजन कराया और तानाजी को पुरस्कार देकर सिंहगढ़ के लिए विदा किया।

इस गीत के अनुसार जैसा कवि ने लिखा है कि बारह अजार सिपाही तानाजी के साथ थे परन्तु इतिहासकारों ने केवल एक हजार का ही वर्णन किया है और यह ठीक प्रतीत होता है।

तानाजी ने अपनी सेना को कई भागों में विभक्त करदिया और कई रास्तों से नियत समय पर किले के नीचे पहुंचने की आज्ञा दे दी।

जब सम्पूर्ण सेना यथास्थान किले के नीचे इकट्ठी हो गई तो तानाजी ने एक चादर बिछाकर पान के दस बीड़े डाल दिये और लालकार कर कहा कि कौन ऐसा वीर है जो अपने प्राणों को संकट में डालकर इस किले में जासूसी करने के लिए जा सकता है? निकल आवे और बीड़ा उठा ले। यदि वह कृतकार्य हो गया तो बड़ी भारी जागीर मिलेगी, और मालामाल हो जायेगा परन्तु किसी को साहस न पड़ा कि बीड़ा उठावे। अन्त में तानाजी ने स्वयं बीड़ा उठाया और भेष बदल रवाना हुआ। नाना प्रकार की चालें चल कर और सदर दरवाजे के पहरेदारों को भुलावा देकर किले के भीतर घुस गया और अत्यन्त सुरक्षित स्थान देखकर सेना में लौट आया। रस्सियों की एक सीढ़ी बनाई गई। तानाजी ने फिर पान के बीड़े चादर पर डाल कर कहा कि कोई क्षत्रिय का बेटा है तो बीड़ा उठावे और रस्सी के ऊपर चढ़े। सब के सब इधर उधर ताकने लगे। किसी का साहस न हुआ कि पान का बीड़ा उठा सके। यह देख तानाजी को क्रोध के नेत्र लाल हो गये। बोल उठा–उठ खड़े होओ, अपने अपने शस्त्र उतार कर रख दो और स्त्रियों के लहंगे पहिन कर घर का रास्ता लो। बस इतना कहना था कि मरहठों के नेत्रों में खून उतर आया। सब के सब आगे बढ़ने लगे। अन्त को तानाजी ने 500 आदमी चुन लिया और सबों ने एक हो ऊपर चढ़ना आरम्भ कर दिया यहां तक कि रस्सी टूट गई,

और सब के सब पृथ्वी पर गिर पड़े। जब तानाजी को यह समाचार मिला तो उन्हें अत्यन्त खेद हुआ और कहने लगे कि केवल रस्सी ही नहीं टूटी प्रत्युत सच पूछो तो हमारे जीवन की लड़ी समाप्त हो गई। चाचा शेलरजी को सम्बोधन कर कहने लगे।

चाचाजी! मेरे लड़के को प्यार करना चाचा ने समझा कि भतीजे का दिल नर्म हो गया और वह फिर इस प्रकार डराने लगा। 500 मनुष्यों से उदयभानु का मुकाबला करना व्यर्थ है। उसके पास 1800 वीर हैं और 'चन्द्रावली' नामक हाथी भी है जो बड़ा भयानक है। इस प्रकार उसके सम्मुख प्राण गंवाने से क्या फायदा है। तानाजी ने उत्तर दिया चाचाजी! ऐसे डरपोकपने से जीवन भर के किये गये सभी कार्यो पर कलंक–कालिमा लग जायेगी। क्षत्रिय के लिए यह धर्म नहीं कि समर में आकर पीछे लौट जाये। अब जो हो सो हो ही कर रहे।

एक इतिहासकार लेखक ने इस प्रकार लिखा है कि तानाजी के साथ ऊपर 300 मनुष्य चढ़े और शेष किसी कारण नहीं चढ़ सके। तानाजी अपने साथियों को लेकर आगे बढ़ा ओर जो मिल गया उसको काटता गया। किले की तमाम सेना में हलच लमच गई। मित्र व शत्रु को पहचानना कठिन हो गया। दोनों ओर की तलवारें म्यान से खींच ली गई। देखते ही देखते पृथ्वी पर रक्त की धारा बह चली।

उधर किले के भीतर उदयभानु मस्त होकर सो रहा था। जब उसे इस प्रकार की चढ़ाई का समाचार मिला तो बोला कि हाथी और उसके योद्वा महावत को सामने खडा कर दो । जब हाथी सामने आया तो महावत जो पठान था बड़े अंहकार के साथ डपट कर बोला! कौन है जो इस प्रकार किले में घुस कर शोर मचाता है।

तानाजी–राजा शिवाजी का सेवक तानाजी सूबेदार! यह सुनकर इस पठान को अत्यन्त क्रोध आया और कहने लगा।

पठान–'अरे जाट, चला जा, क्या तेरी बुद्घि पर पत्थर पड़े हैं। बाप और दादा जो काम आये हैं वही तेरा काम है। चला जा हाथ में खुरपा लो और कन्धे पर रस्सी तथा कम्बल डाल कर जंगल में घास काटो और बनिये की दूकान पर बेचो। ये शस्त्र तेरे लिए व्यर्थ हैं इनको फेंक दो।'

तानाजी–अरे मूर्ख ! क्यों अपने को बाप दादा के नाम पर बट्टा लगाता है; जा, और खेत से सन काट ले आ। उसके बोरे बनाकर अपनी औरत को दे और कह कि बेच कर कुछ धान खरीद लावे और धान के छिलके की रोटी बनावे और चावलों को बाजार में बेच आये। जाओ, तलवार रख दो क्योंकि तुम्हें इसे पकड़ने तक की बुद्घि नहीं है।

इस प्रकार की वंशपरम्परा का वर्णन करके दोनों वीर सामने हुए। पठान उन्मत्त हाथी पर सवार था और मराठा वीर तानाजी घोड़े पर था। सब से पहला वार पठान ने बड़े जोर से किया जो पत्थर को चीरता हुआ पार निकल गया परन्तु वह भी खाली गया। पठान ने फिर दूसरी बार वार किया परन्तु वह भी खाली गया। अन्त में तानाजी घोड़े से उछला और हाथी के समीप आकर उसकी सूंड पर ऐसा वार किया और हाथी के समीप आकर उसकी सूंड पर ऐसा वार किया कि हाथी घायल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। साथ ही पठान भी गिर कर स्वर्गलोक को चला गया इस प्रकार उदयभानु के सब अफसर और बेटे बारी बारी से मारे गये। जब उदयभानु ने देखा कि इस प्रकार कुछ काम नहीं बनता है तो किले में रक्खी तमाम रूई और तेल में आग लगा दी। प्रकाश होने पर उदयभानु को पता लगा कि तानाजी की सेना बहुत थोड़ी है। बस फिर क्या था? शेर के समान गरजा और तानाजी के सामने आ डटा और तानाजी की तारीफ कर के उसे फुसलाने लगा। तानाजी भी उसके प्रश्न का यथोचित उत्तर देते रहे। वह नमकहराम न था कि उदयभानु के फुसलाने से युद्व से विमुख हो जाता।

तानाजी ने कहा, यदि लड़ाई का साहस नहीं हो तो

शस्त्र छोड़ो और गले में पगड़ी डाल कर मेरे साथ चलो। मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि शिवाजी तुमसे अच्छी तरह से पेश आयेंगे। परन्तु उदयभानु ने अपने घमण्ड के वशीभूत हो उस पर कुछ ध्यान न देकर अपनी तलवार का वार तानाजी पर किया बस फिर क्या था! बत की बात में दोनों के वार होने लगे। बहुत बड़ी लड़ाई के बाद मैदान में तानाजी मारा गया।

तनाजी को मार कर उदयभानु यह सोचकर पीछे हटना ही चाहता था कि बस शेर तो मार लिया, बाकी ब ची सेना को अन्य लोग खपा देंगे, इतने में तानाजी का चाचा शेलरजी ललकारता हुआ तानाजी की तलवार लेकर आगे बढ़ा और बोला कि कहां जाता है! तानाजी मर गया तो क्या सारा महाराष्ट्र मर गया? जरा सामने तो आ ओर देख कि मरे हुए सरदार की तलवार क्या काम करती है।

ठतना कहते हुए उदयभानु पर झपट पड़ा। फलस्वरूप उस युद्व में उदयभानु शेलरजी के हाथों मारा गया। राजपूतों की सारी सेना एकत्रित होकर तानाजी की सेना पर टूट पड़ी। इतने में तानाजी का भाई 'सवायजी' किसी प्रकार से अपने साथियों समेत किले में घुस गया और हर हर महादेव की ध्वनि से मराठों का खून उबल पड़ा। फिर क्या था? मरहठे खूब डट कर लड़े और अन्त को उन्हीं की विजय हुई। बचे खुचे राजपूत किला छोड़ कर भाग निकले। किले पर अधिकार करते ही मरहठों ने किले की छत पर से तोपें चलाई जिससे कि शिवाजी किला मिल जाने की सूचना पर सकें। परन्तु जिस समय 'शिवाजी' ने सुना कि तानाजी मारा गया तो अत्यन्त शोक में होकर कहने लगे कि तानाजी मारा गया तो अत्यन्त शोक में होकर कहने लगे कि हा शोक! सिंहगढ़' तो हाथ आया परन्तु 'सिंह' हाथ से जाता रहा।

शिवाजी ने इस विजय के उपलक्ष्य में अपनी प्रथा के विरूद्व सम्पूर्ण सिपाहियों को चांदी के पुरस्कार दिये। 'सवायजी' को इस किले का अध्यक्ष नियत किया। उन्होंने एक मास के अन्दर 'पूर्णधर' किले को विजय कर लिया।

यह कार्यवाही मार्च सन् 1667 ई. में हुई।

उधर कोंकण नामक स्थान में 'म्हाली' किले के घेरे में मुरारपन्त को बहुत हानि उठानी पड़ी परन्तु अन्त में दो मास के पश्चात् किला हाथ आ गया। वर्षाकाल समाप्त होते ही ता. 3 अक्टूबर सन् 1670 को शिवाजी ने 1500 सिपाहियों के साथ सूरत पर चढ़ाई कर दी और तीन दिन तक लूटते रहे। तीन दिन के पश्चात् वह अपनी सेना को लेकर 'सहारा' के रास्ते अपने इलाके में लौट आये और चलते समय शहर वालों को एक विज्ञापन दे गये कि यदि तुम इस लूट से बचना चाहते हो तो 1200000 (बारह लाख) रूपया वार्षिक देना स्वीकार करो।

'शिवाजी' अभी रास्ते में ही थे, उन्हें पता लगा कि दाऊद खां 5000 हजार सेना लेकर पीछा करता आ रहा है। जिस मार्ग से होकर शिवाजी नासिक के पार जाना चाहते थे उस मार्ग से होकर शिवाजी नासिक के पार जाना चाहते थे उस मार्ग में दाऊद खां की सेना बीच में आ गई।

शिवाजी ने अपनी सेना को चार भागों में विभक्त कर दिया एक भाग ने आगे होकर लड़ाई शुरू कर दी। दो भाग पीछे होकर ललकारते रहे और चौथा भाग जिसके पास ख़जाना था चुपके से मुग़ल सेना के आगे निकल कर सीधे मार्ग पर आ गया और निःशंक होकर कोंकण को चला गया। शिवाजी ने दाऊद खां का मुकाबला किया और उसे मार भगाया । शत्रु की सेना से मरहठों का समूह एक स्त्री के अधीन युद्व कर रहा था। वह स्त्री शिवाजी के समीप लाई गई। शिवाजी ने बड़े आदर के साथ अच्छे अच्छे पुरस्कारों के सहित उसको उसके घर भिजवा दिया।

दिसम्बर मास में प्रतापराव को आज्ञा मिली कि खानदेश पर धावा करो, खानदेश का इलाका बड़ा आबाद और धनवान् था। प्रतापराव ने बड़े बड़े नगरों को निष्कण्टक किया और रास्ते में गावों के रहने वालों से इस प्रकार के प्रतिज्ञा–पत्र लिखाये कि वे प्रति वर्ष पैदावार का चौथाई भाग

शिवाजी को दिया करेंगे जिसके बदले शिवाजी की ओर से उनकी रक्षा करने की प्रतिज्ञा की गई। इस प्रकार मुग़लों का सूबा खानदेश भी शिवाजी की अधीनता में आ गया। उधर जब औरंगजेब को यह समाचार मिला तो उसने राजा जसवन्तसिंह को लौटने की आज्ञा दे 40000 सेना के साथ महावतखां को शिवाजी का सामना करने के लिए भेजा। औरंगजेब को शंका थी कि सुल्तान मुअज्जम शिवाजी से मेल रखता है और इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि यदि सचमुच यह बात शिवाजी और जसवन्तसिंह जी के मध्य थी तभी जसवन्तसिंह ने शिवाजी को कष्ट देने के लिए उत्साह नहीं दिखाया।

महावतखां ने दक्षिण पहुंचकर तुरन्त किलों को घेरना आरम्भ कर दिया परन्तु सन् 1662 ई. की वर्षाॠतु तक 'औंडा' और 'पटा' नाम के दो ही किले वापस ले सका। अन्त में सेना के दो भाग कर दिये। एक ने दिलेरखां के आज्ञानुसार 'चाकन' पर धावा किया और दूसरे ने 'इखलासखां' की आज्ञा से 'सह्यरा' को जा घेरा। शिवाजी ' 'सह्यरा' किले को अपने हाथ से नहीं जाने देना चाहते थे इसलिए 'प्रतापराव' और 'पन्त' दोनों को आज्ञा दी कि 2000 सेना लेकर लड़ाई करे और किले को बचावें क्योंकि शिवाजी को यह समाचार मिल गया था कि किले में साम्रगी कम है। किले के पास पठानों ने 2000 घोड़े काट डाले थे। प्रतापराव जब सेना लेकर आगे बढ़ा तो उसने देखा कि इखलास खां बड़े उत्साह और साहस से आक्रमण के लिए आ रहा है। प्रतापराव ठहर गया और जिस समय इखलास खां आगे बढ़ा तो प्रतापराव ने भागना आरम्भ कर दिया। मरहठों को भागता देख कर मुसलमान पीछा करने लगे और छिन्न भिन्न हो गये। बस फिर क्या था, प्रतापराव ने उलट कर पुनः चढ़ाई कर दी जिससे मुग़लों पर अत्यन्त तबाही की मार पड़ी। इस मार काट में मुग़लों के 22 अफसर मारे गये। हजारों मनुष्य कट कर मर गये। कई सरदार घायल हुए और पकड़े गये। इस बड़ी विजय का फल यह हुआ कि मुग़ल सेना, 'सह्यरा'

को छोड़कर औरंगाबाद की ओर हट गई। इस वर्षाऋतु में शिवाजी छोटी छोटी लड़ाइयां लड़ते रहे ताकि सम्पूर्ण दक्षिण प्रान्त में एक राज्य हो जाय। पुर्तगाल वालों से भी कई बार थोड़ी भिड़न्त हुई जिसमें किसी पक्ष की अधिक हानि नहीं हुई।

अंग्रेज भी इस अवसर पर प्रतिज्ञा विषयक पत्र–व्यवहार करते रहे। उधर मुग़ल सम्राट् औरंगजेब ने जब यह समाचार सुना कि इखलासखां हार गया तो महावतखां और खानमुअज्जम को दक्षिण का सूबेदार नियत कर दिया। खानजहां ने यह उचित समझा कि मरहठों पर हमले न किये जायं। किन्तु घाटों और मार्गों को रोक कर उन्हें तंग किया जाय। अतएव उसने 'बहादुरगढ़' नाम का किला बनवाया परन्तु उसे यह कब मालूम था कि मरहठे घाटों और दर्रो (घाटी) से बड़ी सुगमता पूर्वक आ जा सकते हैं और वे इस देश की ईंट–ईंट से परिचित हैं। खानजहां जब इस प्रकार के काम में लगा था तो शिवाजी अवसर पाकर 'गोलकुण्डा' जा निकले और वहां से बहुत सा माल व धन लेकर वापस आये। इस अवसर पर 15 दिसम्बर 1668 ई. को बीजापुर के बादशाह आदिलशाह की मृत्यु हो गई और उसके इलाके में बड़ी गड़बड़ मच गई। कोई प्रबन्ध ठीक न था। इस अवसर पर शिवाजी ने बीजापुर पर धावा करने का विचार कर लिया। मार्च सन् 1673 ई. में विशालगढ़ के पास एक बड़ी सेना एकत्रित की। इस सेना के एक भाग को 'पनाला' किले की ओर वापस भेज दिया। परन्तु वास्तविक इच्छा यह थी कि हुगली नगर जो उन दिनों बड़ा धनाढ्य था, लूटा जाय। इस नगर को लूटने से उस सेना को इतना धन मिला जितना धन पहले कभी न मिला था। अंग्रेज व्यापारियों को भी इसमें बहुत हानि उठानी पड़ी। एक बार पहले भी वे राजापुर के स्थान पर लूटे जा चुके थे। अब दूसरी बार हुगली में जा कर लूटे गये।

शिवाजी ने अपने समुद्री बेड़े को लेकर बीजापुर के उस भाग को तंग करना प्रारम्भ कर दिया जो समुद्र के तट

www.hindustanbooks.com

पर था। भीतर के भाग में देशमुखों को राजद्रोह के लिए तैयार कर मुसलमानी थाने उठवा दिये। राजा बदनूर ने भी हुगली की लूट से भयभीत होकर शिवाजी का साथ देना स्वीकार किया। मई मास में सेना के एक भाग ने 'परली' के किले को विजय किया और सितम्बर के आरम्भ में 'सतारा' प्राप्त कर लिया। और सितम्बर के आरम्भ में 'सतारा' प्राप्त कर लिया। बाद को 'चन्दनपडूगढ़' तथा 'नन्दीगढ़' आदि किले भी फतह कर लिये। प्रतापराव ने अब्दुलकरीम को जो बीजापुर का अध्यक्ष था इतना सताया कि उसे सन्धि की थी उन्हें शिवाजी ने पसन्द न किया और प्रतापराव से शिवाजी अप्रसन्न हो गये।

प्रतापराव इस अप्रसन्नता के कारण 'बरापांघाट' के प्रान्त में चला गया जिससे फिर अब्दुलकरीम को साहस हो आया और उसने बहुत सी सेना इकट्ठी करके पनाला को फिर से विजय करना चाहा। फरवरी सन् 1643 में यह धावा प्रारम्भ हुआ। अब्दुलकरीम की सेना किले के पास पहुंची ही थी कि प्रतापराव अपनी सेना सहित उधर से आ निकला। मालूम होने पर शिवाजी ने प्रतापराव को लिख भेजा कि जब तक तू मुसलमानी सेना का विध्वंस करके बहुत सा धन लूट नहीं लावेगा तब तक मैं तेरा मुंह नहीं देखना चाहता। प्रतापराव ने इस अनादर को दूर करने के लिए एक महती सेना के साथ बीजापुर पर चढ़ाई कर दी। यद्यपि प्रतापराव बड़ी वीरता से लड़ा परन्तु युद्व में मारा गया और उसकी सेना हताश होकर भागने लगी। मुसलमानों ने समझा कि मरहठी सेना समाप्त हो चुकी है अतएव उन्होंने पीछा करना शुरू किया। इतने में 'मुशाहजी' पांच हजार सिपाही लेकर आ पहुंचा और मुसलमानी सेना जो पीछा कर रही थी अपने प्राण बचा कर भाग निकली। बेचारे अब्दुलकरीम को जीती हुई बाजी हारनी पड़ी। फलस्वरूप अपना सा मुंह लेकर वह बीजापुर वापस चल दिया।

शिवाजी को जब प्रतापराव की मृत्यु का समाचार मिला तो उन्हें अत्यन्त खेद हुआ। उसके बेटे को बहुत सी जागीर दी गई और उसकी बेटी से अपने बेटे के साथ विवाह करके राजवंश से सम्बन्ध कर दिया। मुशाहजी के काम से शिवाजी अत्यन्त प्रसन्न हुए और उसे 'हेमराव' की पदवी देकर अपना सरदार बनाया। इस प्रकार भारत का प्रायः सम्पूर्ण दक्षिणी भाग अपने अधीन करके शिवाजी ने एक बहुत बड़ा यज्ञ आरम्भ किया और जून 1674 ई. (अर्थात् 13 ज्येष्ठ सं. 1731 वि.) को गद्दी पर बैठे।

शिवाजी अपना सिक्का तो पहले ही चला चुके थे अब अपने नाम का संवत् भी उन्होंने जारी किया। इस अवसर पर अंग्रेजों से सन्धियां की गई। इस वर्ष शिवाजी के सिंहासनासीन होने के 15 दिन पश्चात् इनकी पूज्य माता जीजाबाई का देहान्त हो गया। अपने पुत्र शिवाजी को गद्दी पर बैठा कर लगभग सारे दक्षिण का शासक बना कर एवम् अपनी जाति को उच्च गौरव की सीढ़ी पर चढ़ा कर जीजाबाई की आत्मा किसी नये काम के लिए शरीर को त्याग कर चल बसी। इसके पश्चात् एक युद्ध पुनः 1675–76 ई. में मुग़लों के साथ शिवाजी को लड़ना पड़ा।

इस युद्ध में मुग़लों का अध्यक्ष यद्यपि बड़े साहस के साथ लड़ता रहा तथापि शिवाजी व हेमराव के सामने उसकी एक न चली। इसके बाद शिवाजी ने कई नये किले प्राप्त किये। हेमराव ने नर्मदा और गोदावरी नदी के पार जाकर मुग़ल सल्तनत से अपने को निष्कण्टक किया साथ ही शिवाजी ने 'मुनिवर' और 'पनाला' की भूमि को स्वाधीन करके इसकी रक्षा के निमित्त कई नये किले बनवाये।

अध्याय 12

कर्नाटक की चढ़ाई

दक्षिण देश का संक्षिप्त इतिहास हम प्रथम ही विज्ञप्ति (भूमिका) में लिख चुके हैं। इसके पश्चात् शिवाजी का वृत्तान्त लिखते हुए हम ने यह दर्शाया कि शिवाजी ने कर्नाटक का प्रदेश जीत लिया और वही मण्डल बीजापुराधीश की ओर से शिवाजी को पुरस्कार में मिल गया। सन् 1676 ई. तक हमने शिवाजी की कार्यवाहियों का वर्णन किया।

अब शिवाजी दक्षिण प्रान्त के महान् बलवान सम्राट् बन गये। अब इन्हें याद आया कि अपने पिता की जायदाद से तो कुछ हिस्सा मिला ही नहीं जो दक्षिण में हिन्दू राज्य को सुदृढ़ करने के लिए आधीन मण्डल बन जायें इसलिए पूर्वीय दक्षिण की ओर अपना रूख किया।

कर्नाटक का वृत्तान्त लिखने से पूर्व हम यह लिख देना उचित समझते हैं कि उस समय दिल्ली, बीजापुर और गोलकुण्डा की क्या दशा थी? औरंगजेब का सदा यह विचार बना रहता था कि सारा दक्षिण मुग़लराज्य में मिला लिया जाये। इसके लिए चाहे छोटे छोटे राज्यों को नष्ट करना पड़े तो भी कोई हर्ज नहीं परन्तु दक्षिणी प्रान्त अवश्य हाथ आवे। अगर औरंगजेब से सुलह करके बीजापुर और गोलकुण्डा ठीक रहते तो इसमें सन्देह न था कि सम्पूर्ण दक्षिण नाम मात्र से ही औरंगजेब की राजधानी में शामिल हो जाता अथवा औरंगजेब ही सच्चे हृदय से बीजापुर और गोलकुण्डा से मेल करके शिवाजी को अपने बस में करने का यत्न करता तो भी शायद सफलता मिली होती। परन्तु उसे तो यह इच्छा रही कि ये तीनों शक्तियां क्षीण हो जायें और दक्षिण का सारा प्रदेश मुग़लराज्य में शामिल हो जाये। औरंगजेब इन शक्तियों को एक दूसरे से लड़ाने में ही अपनी सफलता देखता था, जिसका फल यह हुआ कि किसी

को भी उसकी बात का विश्वास न रहा। ये तीन राजा एक तरफ औरंगजेब से लड़ते थे दूसरी तरफ आपस में भी झगड़ते रहते थे। इस झगड़े में यदि चार शक्तियों में से किसी ने सफलता प्राप्त की तो वे शिवाजी ही थे। सन् 1673 ई. में बीजापुर का बादशाह आदिलशाह मारा गया। उसका पुत्र अभी 5 वर्ष का था। सबने मिल कर खवासखां को को प्रबन्धकर्त्ता बनाया परन्तु कुछ काल पीछे अब्दुलकरीम ने जो बीजापुर राज्य का एक मान्य पुरूष था और जिसने लोगों से मिलकर खवासखां को मरवा डाला था, स्वयम् उसका कार्यभार अपने ऊपर ले लिया। यह महाशय 'दिलेर खां' मुग़ल सेनाध्यक्ष के सम्बन्धी थे, इसीलिए मुग़ल राजा से बिगाड़ना नहीं चाहता था। खवासखां इसलिये मारा गया क्योंकि उसने मुग़लों की अधीनता स्वीकार कर ली थी और आदिलशाह की पुत्री 'बादशाह बीवी' को औरंगजेब के पुत्र के साथ ब्याह कर देने की प्रतिज्ञा कर ली थी। इसलिए अब्दुलकरीम इस समय विचित्र शिकंजे में फंसा हुआ था। भीतर

से तो वह मुग़लों का शत्रु था परन्तु बाहरी दिखावे में दिलेरखां के कारण उससे बिगाड़ करने का साहस न होता था। उधर गोलकुण्डा में सन् 1670 ई. में कुतुबशाह के मर जाने के कारण प्रबन्ध में गड़बड़ी मच गई थी। उसका दामाद' अबूहुसेन' गद्दी पर बैठा था परन्तु वास्तविक बल और सारा अधिकार अन्यत्र था। शिवाजी ने अपने लिए यह अवसर अच्छा समझा और कर्नाटक के धावे की तैयारी शुरू कर दी।

यहां पर एक बात याद रखने योग्य है कि शिवाजी का एक छोटा भाई और था, जिस का नाम 'दुनकाजी' था और वह अपने बाप की जागीर का मालिक बन बैठा था! शाहजी के जो विश्वासपात्र अधिकारी थे उनमें से 'रघुनाथ नारायण' उसके पास रही करता था। रघुनाथ नारायण और 'दुनकाजी' में परस्पर अनबन हो गई। कुछ समय तक तो वह गोलकुण्डा में अबूहुसेन के पास रहा और उसने मदनपन्त से सम्बन्ध पैदा कर लिया तत्पश्चात् शिवाजी के पास चला आया। उसका एक भाई जिसका नाम 'सोमन्त' था शिवाजी के दरबार में एक प्रधान

पद पर नियुक्त था। इसके अतिरिक्त शिवाजी को यह भी मालूम था कि उनके पिता 'शाहजी रघुनाथ नारायण का खूब सत्कार करते थे और वह उनके वंश के पुराने एंव विश्वासपात्र कर्मचारियों में से था। शिवाजी ने रघुनाथ नारायण का उचित सत्कार किया और उसे प्रधान की पदवी दी। इसी ने सब से पहले शिवाजी को कर्नाटक की ओर जाने की सम्मति दी। इस सम्मति से शिवाजी ने सब से पहले खानजहां को कुछ रूपया भेंट यिका और उससे प्रतिज्ञा कराई ि कवह शिवाजी के राज्य में हस्तक्षेप नहीं करेगा। फिर उसने अपने राज्य का प्रबन्ध किया। चुने चुने कार्यकत्ताओं को अच्छे अच्छे स्थानों पर नियत करते सारा मण्डल मुरारपन्त के हवाले कर दिया। सन् 1671 ई. के आरम्भ में दक्षिण की ओर चल दिया।

जब हैदराबाद कुछ समीप आ गया तो 'मदनपन्त' स्वयं शिवाजी की आगवानी के वास्ते आया और बड़े आदर सत्कार के साथ उनको अपनी राजधानी में ले आया। अन्त में शिवाजी और गोलकुण्डा के बादशाह में यह प्रतिज्ञा हुई कि कर्नाटक में जितनी 'शाहजी' की जागीर है उसके अतिरिक्त जितनी भूमि शिवाजी के हाथ आये उसे गोलकुण्डा के बीच बराबर बांट दी जाय और यदि बीजापुर के दरबार से अब्दुलकरीम को निकाल कर उसके स्थान पर मदनपन्त के भाई को नियत कर दिया जाय तो उसको भी उसमें से हिस्सा दिया जाय। यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो स्पष्ट ज्ञात होता है कि नियत कर दिया जाय तो उसको भी उसमें से ज्ञात होता है कि कर्नाटक वास्तव में बीजापुर का था। अपनी जागीर के अलावा न कुछ शिवाजी का था और न कुछ गोलकुण्डाधीश का । यह भी परस्पर प्रतिज्ञाएं की गई कि दूसरों के मुकाबले में शिवाजी और गोलकुण्डा अधीश एक दूसरे की सहायता करेंगे। इस प्रकार मुसलमानी गोलकुण्डा दरबार को दम दिलासा देकर शिवाजी मार्च मास में कृष्णा नदी के पार उतर गये। कुछ दिन तो तीर्थ यात्रा में बीते। तत्पश्चात् कर्नाटक पर चढ़ाई की। मई के प्रथम सप्ताह में मद्रास में जा निकले और गुंजी प्रान्त में पहुंचे जो उस समय बीजापुर के अधीन

था। अमीर खां के पुत्रों ने जो उस राज्य के शासक थे स्वंय ही अपनी इलाका शिवाजी के हवाले कर दिया। शिवाजी ने वहां महाराष्ट्र का शासन और वही प्रबन्ध आदि जारी रखकर 'रवानी' को हवालदार नियत कर दिया आगे बढ़ चले। बीजापुर के एक अधिकारी शेरखां ने पांच हजार सिपाहियों से उसका मुकाबला किया परन्तु परास्त होकर कैद हो गया। इस अवसर पर सेना के बाकी हिस्सों ने (जिनको शिवाजी पीछे छोड़ गये थे) 'दिलौर' पर धावा कर दिया। यह घेरा 5 दिसम्बर तक रहा अन्त में किला हाथ आ गया। इधर शिवाजी ने पने भाई 'दुनकाजी' से 'तरवाड़ी' के स्थान पर मुलाकात की और यह अभिलाषा प्रकट की कि दोनों भाई बड़े उत्साह से मिल जायें।

शिवाजी अपने पिता शाहजी की जायदाद से आधा भाग मांगते थे परन्तु 'दुनकाजी' नहीं देता था। निर्णय कुछ भी न हो सका, दुनकाजी तंजोर किले को लौट गया। शिवाजी की सेना विजय पर विजय प्राप्त करती गई। शिवाजी बराबर अपने भाई को कहते गये कि बहुत अच्छा हो यदि सन्धि कर ली जाये क्योंकि मैं भमि की इच्छा से यहां नहीं आया हूं परन्तु तो भी अपने पिता की जायदाद छोड़ना नहीं चाहता। इस अवसर पर 'दुनकाजी' ने शिवाजी की एक न सुनी, फलस्वरूप शिवाजी ने शाहजी के सम्पूर्ण प्रान्तों पर अधिकार जमा लिया।

इधर शिवाजी विजय करने पर तुले हुए थे, उधर औरंगजेब ने सुना कि 'खानजहां' ने शिवाजी से रूपया ले लिया है और शिवाजी ने गोलकुण्डा से मेल कर लिया है तो उसने खानजहां को वापस बुला लिया ओर दिलेर खां को आज्ञा दी कि अब्दुलकरीम बीजापुर के साथ मिल कर गोलकुण्डा पर धावा करे।

इस युद्व में मदनपन्त ने खूब वीरता से मुकाबला किया जिसका फल यह हुआ कि बीजापुर की सेना पराजित हो गई। इस पराजय के पश्चात् अब्दुलकरीम बीमार पड़ गया और जनवरी 1670 ई. में मर गया। दिलेर खां ने मसऊदखां को

उसके स्थान पर नियत कर दिया। बदले में उसने दिलेरखां को बहुत सा रूपया देने की प्रतिज्ञा की और यह भी कहा कि वह कभी शिवाजी से सन्धि न करेगा अब्दुलकरीम के मरने के पश्चात् सेना का बहुत सा वेतन बाकी था। फलस्वरूप धीरे धीरे सेना घट चली।

जिस समय यह समाचार शिवाजी को मिला तो रघुनाथ नारायण और सेनापति 'भीमराव' को कर्नाटक में छोड़ कर वापस चले आये। मार्ग में भी विजय पर विजय करते आये। कई किले उस समय उनके हाथ आये। जिस समय शिवाजी 'तुर्गल' पहुंचे तो उन्हें मालूम हुआ कि कर्नाटक में 'दुनकाजी' ने उनकी सेना पर धावा कर दिया है परन्तु बहुत कुछ हानि सह कर पीछे हट गया है। इस खबर को पाकर शिवाजी ने दुनकाजी को पत्र लिखा थ कि मुझे इन बहुमूल्य जातीय वीरों के नष्ट हो जाने का अत्यन्त कष्ट है जो इस प्रकार परस्पर के युद्व में मारे जा रहे हैं। हमें मेल करना चाहिए जिससे शत्रु पर विजय पा सकें। अन्त में इस चिट्ठी ने दुनकाजी का दिल पिघला दिया। दुनकाजी को यह भी विश्वास हो गया कि शिवाजी का मुकाबला करना व्यर्थ है। उसका भाग्य बढ़ा चढ़ा है। अन्त में पिता की धन सम्पत्ति और भूमि आदि में भाग देना भी स्वीकार कर लिया। इस प्रकार से विजयी शिवाजी 1 साल 6 माह के पश्चात् अपने रायगढ़ किले में जा पहुंचे।

उधर दुनकाजी से सन्धि हो जाने के कारण हेमराव भी वापस आया और समीप पहुंच कर उसने जनार्दनपन्त की सम्पत्ति से बीजापुर की सेना पर धावा कर दिया। इसमें शत्रु को अधिक हानि उठानी पड़ी। पांच सौ घोड़े, पांच हाथी और शत्रु का सेनाध्यक्ष उनके हाथ आया। बेचारा बीजापुर न इधर का रहा न उधर का। मुग़ल सेना के भरोसे पर ही इसने शिवाजी से युद्व छेड़ा था। उधर मुसलमान मुग़ल सहायकों की यह दशा

हुई कि जिस समय औरंगजेब को उस प्रबन्ध का समाचार मिला जो कि दिलेर खां ने मसऊदखां से किया था तो उसने इस प्रबन्ध को अस्वीकार कर दिया और दिलेर खां को आज्ञा दी कि बीजापुर की सेना को वेतन देकर उसको बस में कर ले और बीजापुर में राजकीय अधिकार जमा ले। अन्त को मसऊदखां शिवाजी से सहायता के लिए प्रार्थी हुआ। शिवाजी भी बहुत सी सेना लेकर आगे बढ़े इस धावे में शिवाजी ने दिल खोल कर मुग़लिया मण्डल को लूटा यहां तक कि लूटते लूटते गोदावरी पार तक चले गये। स्वयं सुलतान मुअज्जम भी जिसको अभी दक्षिण का सूबेदार नियत करके औरंगजेब ने भेजा था औरंगाबाद में विद्यमान था। सूबेदार के रहते हुए भी शिवाजी की सेना ने तीन दिन निश्चित हो खूब लूट पाट की। यहां तक कि कोई मुसलमान स्थान न छोड़ा। शिवाजी के तमाम जीवन में यह पहला अवसर था कि जहां उन्होंने एक धार्मिक पुजारी को कष्ट दिया।

हम आगे चलकर मुसलमान इतिहासकारों की साक्षी से यह बात सिद्ध करेंगे कि शिवाजी धार्मिक स्थानों को कितना पवित्र समझते थे। परन्तु तब भी शिवाजी के इस प्रकार के कामों से मुग़लों को बड़ा क्रोध पैदा हो गया और चारों ओर से मुग़ल सेना ने शिवाजी को घेर लियां शिवाजी का एक अफसर 'सैंदूजी' मारा गया और सेना में खलबली मच गई परन्तु समय पड़ने पर धैर्य रखना शिवाजी ही जैसे वीर का काम था।

अत्यन्त साहस के साथ शिवाजी ने अपने प्राणों को संकट में डालकर चढ़ाई कर दी और शत्रु की सेना को दिखला दिया कि आवश्यकता पड़ने पर शिवाजी किस प्रकार से तलवार चला सकता है । बस फिर क्या था मरहठे की तलवार बिजली के समान चमकने लगी और विकट युद्व छिड़ गया। मरहठे अपने सरदार को लेकर मुग़ल सेना के बीच होकर निकल गये परन्तु अभी दूर नहीं गये थे कि मुग़ल सेना ने एकत्रित होकर राजा किशनसिंह (जयसिंह का पोता) की आज्ञानुसार धावा कर दिया यहां तक कि शत्रुओं ने चारों तरफ से मरहठों को घेर लिया और शिवाजी का रास्ता बन्द कर दिया।

जब शिवाजी ने देखा कि इतनी बड़ी सेना से पार पाना कठिन है तो वे एक गुप्तचर को साथ लेकर दूसरे रास्ते से निकल गये। जिस समय शिवाजी पटना में आये तब 'मसऊदखां' का एक पत्र उन्हें मिला जिसमें लिखा हुआ था कि दिलेरखां किले की दीवारों के इतना समीप आ पहुंचा है कि यदि सहायता नहीं मिली तो सब काम बिगड़ जायेगा। शिवाजी पत्र को पढ़ते ही बीजापुर की तरफ रवाना हो गये। अभी थोड़ी ही दूर गये होंगे कि फिर समाचार मिला कि उनका बेटा सम्भाजी दिलेर खां से मिल गया है। यह सुनते ही शिवाजी ने भीमराव को तो बीजापुर की तरफ भेज दिया और आप सम्भाजी को लेने के लिए 'पनाला' दुर्ग की तरफ रवाना हो गये। उधर दिलेर खां ने अपनी सेना का एक भाग सम्भाजी को देकर मरहठों का राजा बना दिया और उसे भूपालगढ़ पर धावा करने की आज्ञा दे दी जिसे सम्भाजी ने जाते ही फतेह किया। उधर हेमराव ने दिलेर खां को तंग करना शुरू कर दिया। किले के अन्दर वाले लोग भी धैर्य पूर्वक डटे रहे। हेमराव ने दिलेर खां को सामग्री पहुंचाने वाले सभी साधन नष्ट कर दिये और उसे तंग किया कि उसने लाचार होकर किले को छोड़ दिया और आस पास के प्रान्तों को लूटना शुरू कर दिया। दिलेर खां कृष्णा नदी पार करके कर्नाटक को उजाड़ने में लगा हुआ था कि उधर जर्नादन पन्त भी आ पहुंचा जिसने मौका पाकर दिलेर खां पर चढ़ाई कर दी और उसे परास्त करके ही छोड़ा।

इस समय जब यह समाचार औरंगजेब को मिला तो उसने सुलतान मुअज्जम और दिलेररखां दोनों को बुला भेजा और उनकी जगह खानजहां को सूबेदार नियत कर दिया सम्भाजी के विषय में औरंगजेब ने उसको कैद करके दरबार (दिल्ली) में ले आने की आज्ञा दी परन्तु सम्भाजी किसी प्रकार बचकर भाग निकला और शिवाजी के साथ जा मिला। शिवाजी ने सम्भाजी को 'पनाला' किले में कैद कर दिया जिससे कि कैद में रहकर उसका जोश शान्त हो जाये और वह अपने किये पर लज्जित हो।

अध्याय 13

शिवाजी का स्वर्गवास

सन् 1680 ई. का वर्ष प्रारम्भ हो चुका है। शिवाजी बीजापुर में अपने दरबार का प्रबन्ध करने में लगे हुए हैं। सम्पूर्णविजित भूमि, अपने पिता की जागीर तथा तत्जौर प्रान्त गोपाल और विहारी के इलाके के अधीन हैं। बीजापुर राज्य शिवाजी का ही समझा जायेगा। शिवाजी इस तमाम विजयोल्लास के आनन्द में मस्त हैं। उन्हें इस बात का पता नहीं कि उनकी अन्तिम घड़ी समीप है। उनकी आत्मा अपना कार्य कर चुकी और उसको इस शरीर के त्यागने की इच्छा है। शिवाजी अपने राज्य प्रबन्ध में लगे हुए थे कि मार्च सन् 1680 ई. को अन्तिम दिनों में उनके घुटनों में सूजन पैदा हो गई। यहां तक कि ज्वर भी आना आरम्भ हो गया जिसके सबब से सात दिन में शिवाजी की आत्मा अपना नश्वर कलेवर छोड़ परम पद को प्राप्त हो गई।

15 अप्रैल सन् 1680 ई. को शिवाजी का देहावसान हो गया। यह यच है कि मृत्यु सबसे अधिक बलवान् है। वह मनुष्य जो लगभग 40 वर्षो तक भारतवर्ष के कई बादशाहों से वीरता पूर्वक लड़ा। जिसने लाखों मनुष्यों का मुकाबला किया, जिसने अपने साहस के सामने पर्वत, नाले, नदी, समुद्र चोटी व घाटी, जंगल, शेर, हाथी आदि को कुछ न समझा। वह आज क्षण भर में मृत्यु के कराल गाल में समा गया। बीमारी ने उन्हें सात ही दिन में ऐसा कमजोर बना दिया कि उनकी आत्मा को शरीर त्यागना पड़ा, जिस शरीर से उन्होंने ऐसे बड़े बड़े काम किये जिससे भारत का इतिहास भरा पड़ा है। खेद है कि वह शिवाजी अपनी थोड़ी आयु में ही इस संसार से चल दिये कुछ आश्चर्य की बात न थी यदि

शिवाजी कुछ दिन और जीवित रहते तो यवन राज्य की पक्की इमारत को और ठोकर लगाते, परन्तु मृत्यु किसी आवश्यक कार्य की प्रतीक्षा नहीं करती है। संसार में यदि कोई ऐसा समय है कि जिससे किञ्चित् मात्र भी मोहलत नहीं मिलती तो वह मृत्यु है। शिवाजी के इस प्रकार इस अवस्था में परलोकवास से उनकी जाति को जितना दुःख हुआ है उसका अनुमान करना कठिन है।

अध्याय 14

शिवाजी का चालचलन

शिवाजी मर गये और मरना ही सच है परन्तु इसमें सन्देह है कि शिवाजी जैसी महान् आत्माएं बहुत कम संसार में जन्म लेती हैं। ऐसा लड़ाका, ऐसा वीर और शत्रु के मुकाबले में अजेय, जिसने जातीय स्वतन्त्रता के लिए युद्व में हजारों घर के चिऱाग (चौपट सुनसान) कर दिये, गांव उजाड़ दिये, सैकड़ो बच्चों को अनाथ कर दिया। जिसने शत्रु से बदला लेने के लिए धोखे व चालबाजी से काम लिया। ऐसे मनुष्य के निजी जीवन पर दृष्टि डालो तो चकित हो जाओगें सच है इस प्रकार की अवस्थाओं को देख कर ही मनुष्य कह उठता है िकवह मनुष्य नहीं, अवतार है। उसके देशीय भाइयों ने भी उसकी इन बातों और विचित्र शक्तियों से उसे अवतार बना दिया। यह विचारने का स्थान है कि शिवाजी ने अपना जीवन कहां से आरम्भ किया और कहां समाप्त किया? जिस समय शिवाजी उत्पन्न हुए थे उसके पिता क्या थे, और उन्नीस वर्ष की आयु में पहला धावा किया था तो क्या हालत थी जब उनकी मृत्यु हुई तो क्या हालत थी? बड़े बड़े इतिहासकारों ने इनकी वीरता और साहस की प्रशंसा की है। औरंगजेब जैसे

निर्दयी के राजत्व काल में उत्पन्न होकर आर्य जाति के गौरव को जीवित कर देना शिवाजी का ही काम था। वे अपने नौकरों और सम्बन्धियों से प्रेमपूर्वक बर्ताव करते थे। शिवाजी की मृत्यु के कुछ दिन पहले यह समाचार मिला था कि ''दुनकाजी हतोत्साह होकर सम्पूर्ण कार्य छोड़ बैठा है और उसने वैराग्य धारण कर लिया है।'' ऐसा समाचार पाकर शिवाजी ने एक पत्र लिखा था जिसका विषय इस प्रकार था–

प्यारे बन्धु–

बहुत दिन हुए तुम्हारा पत्र नहीं मिला, चित्त उदास है आज 'रघुपन्त' के पत्र से ज्ञात हुआ कि तुम उदास हो और अपने शरीर की भी परवाह नहीं करते। तुम्हारी सेना सुस्त पड़ गई है परन्तु तुम्हें कुछ परवाह नहीं। लोगों को सन्देह है कि तुम कहीं वैरागी न बना जाओ। मैं हैरान हूं कि तुम अपने पिता के सच्चे दृष्टान्त को क्यों भूल गये? जिरकाल तक उनके साि रहे और उनकी संगति से लाभ उठाया। यह ध्यान देने की बात है कि पिताजी ने कैसी वीरता व गम्भीरता से कठिनाइयों का सामना करते हुए बड़े बड़े कार्य किये, ओर नाम पैदा किया, सदैव अपने आपको भंयकर आपत्तियों से बचाया। तुम को उनकी विद्वत्ता एवं गम्भीरता से लाभ उठाने की अनेक अवसर मिलते रहे। मुझ को भी जैसा अवसर मिला मैंने भी उनका यथाशक्ति अनुसरण कर लिया। यह वैरागीपन तुम्हें शोभा नहीं देता। आपने राज्य–कार्य तथा कोषादि ऐसे मनुष्य के हाथ में दे दिये हैं जो समय पड़ने पर सब को पचा जाय। क्या तुम को यह उचित है कि वैराग्य धारण करके अपनी शारीरिक अवस्था का सर्वनाश कर दो, यह कैसी विद्वत्ता है? इसका क्या फल होगा? मैं तुम से बड़ा हूं मेरी तरफ से तो कुछ न कुछ डर तुम्हें अवश्य होना चाहिए। अब उठो निद्रा त्यागो और वैरागी होने का विचार मन से भुला दो। अधीरता एवं

शोक को दूर कर दो। अपने नित्य कर्मों में चित्त लगाओ। अपनी शारीरिक अवस्था पर ध्यान दो और आराम की इच्छा करो। अपनी प्रजा की रक्षा करो। अपने सैनिकों पर अधिकार करो। अपनी प्रजा की रक्षा करो। अपने सैनिकों पर अधिकार जमाओ और अपने कर्मचारियों से यथायोग्य कार्य लेते हुए संसार में यश पैदा करते रहों जब ऐसा होगा तो तुम्हारी कीर्ति और साहस को सुनकर हमारा चित्त शान्त होगा। तुम्हारी इस दशा को देखते हुए हमारा चित्त महान् शोकसागर में डूबा हुआ है। अतएव उठो! क्मर बांध अपनी अवस्था पर ध्यान दो और मेरे चित्त के दुःख को दूर करो। यह आयु तुम्हारे वैराग्य धारण करने के लिए नहीं वरन् बड़े बड़े कार्य करके यश पैदा करने के लिए है। हां वृद्घावस्था का समय तो वैराग्य धारण करने का होता है परन्तु तुमने तो अभी से ही वैराग्य धारण कर लिया है। न मालूम अभी तुमने कौन से काम किये हैं जो अभी से ही शान्त हुए जाते हो। देखना है कि तुम अब क्या करके दिखाते हो?

यह शिक्षा शिवाजी ने अत्यन्त शुद्ध भाव एवं सच्चे दिल से दी थी। एक बार इनके बेटे 'सम्भाजी' ने एक ब्राह्मण की लड़की के ऊपर कुदृष्टि डाली। जब यह खबर शिवाजी को मिली तो तत्काल उसे कैद कर लिया, एस पर पहरा बिठा दिया गया। इसी नाराजगी के कारण 'सम्भाजी' दिलेरखां से जा मिला था। शत्रुओं की स्त्रियां जब कभी शिवाजी को मिलती थी तो उनके साथ शुद्ध हृदय से पेश आते थे और आदर सहित उनको अपने घर भिजवा देते थे। शिवाजी कभी दूसरे मत से विरोध न करते थे। खानखां ने अपनी पुस्तक के दूसरे भाग पृष्ठ संख्या 110 में लिखा है कि शिवाजी का यह नियम था कि कोई मस्जिदों को हानि न पहुंचावे, औरतों को न छेड़े, और मुसलमानों के धर्म की हंसी न उड़ावे। शिवाजी को जब कभी कोई 'कुरान' की पुस्तक मिल जाती थी तो किसी मुसलमान को दे देते थे। औरतों को अत्यन्त आदर की दृष्टि से देखते थे और उन्हें उनके रिश्तेदारों

की शरण में पहुंचा देते थें लूट खसोट में गराबों और काश्तकारों की रक्षा करते थे। गो–ब्राह्यणों के लिए तो वे देवता स्वरूप थे। यद्यपि बहुत से लोग उनको लाालजी बताते हैं परन्तु उनके जीवन के कामों से विदित होता है कि वे जुल्म और अन्याय से धन कमा कर इकट्ठा करना अत्यन्त नीच काम समझते थे। शत्रु के धन को और राज्य को लूटने को वह अच्छा समझते थें एक बार दिलेर खां, शिवाजी के राज्य से बहुत सा माल और धन लूट कर ले चला था। जब शिवाजी को खबर मिली तो तत्काल उसका पीछा किया और धन वापस लाकर मालिकों को दे दिया।

शिवाजी की सफलता उनकी वीरता पर निर्भर थी। वे ऐसे बुद्विमान थे मानो जादू के पुतले हों। जो मनुष्य एक बार उनके हाथ आया वह कभी भी रूष्ट होकर नहीं गया। शत्रु की सेना से उनकी तरफ अनेक बार हिन्दू व मुसलमान आ मिले परन्तु शिवाजी की सेना से सम्भाजी के अतिरिक्त और कोई शत्रु की सेना से नहीं मिला। शिवाजी अपने धर्म पर अत्यन्त दृढ़ रहते थे। रामायण और महाभारत आदि ऐतिहासिक तथा धार्मिक पुस्तकों के अवलोकन व श्रवण से उनको अधिक प्रेम था। कभी कभी मौका पाकर युद्व–स्थल से ही कथा श्रवण करने को चले जाते थे। जहां कहीं भी धर्म–चर्चा और मत–मतान्तरों पर शास्त्रार्थ का समाचार पाते थे वहां अवश्य पहुंचा करते थे। पूजा और नित्य कर्म में कभी फर्क नहीं पड़ता था।

पिछले पृष्ठों में शिवाजी का राज्य, शासन और उनकी वीरता और दिलेरी का वर्णन कर चुके हैं। पूर्व इसक कि शिवाजी के जीवन का संक्षिप्त इतिहास लिखना समाप्त करें, हम उचित समझते हैं कि उनके शासन का दिग्दर्शन करावें। जिससे यह मालूम हो जाय कि राज्य–प्रबन्ध में उनका मस्तिष्क और विचार–शक्ति किस कोटि की थी। शिवाजी केवल उच्च बुद्वि क वीर तथा सिपाही ही न थे वरन राजनीतिज्ञों और राजशासकों में भी अद्वितीय थे।

अध्याय 15

राज्य का प्रबन्ध

शिवाजी ने राज्य के प्रबन्ध के लिए एक राजसभा बना रक्खी थी जिसके आठ सभासद थे, जिनका नाम 'अष्टप्रधान' था आठ विभागों के उत्तम–उत्तम कार्यकर्त्ता उसके सभासद थे–

(1) **पेशवाजी**– राजमन्त्री थे और राजा के बाद रियासत के सब से पहले पद पर नियुक्त थे। इनका दर्जा दरबार में राजसिंहासन के नीचे दाहिने ओर अव्वल जगह पर रहता था।

(2) **सेनापति**– अर्थात् सिपहसालार, सेना का उत्तम ओहदेदार था और दरबार में बाई ओर दूसरे नम्बर पर बैठता था यह स्थान गवर्नमेंट आफ इण्डिया के कमाण्डर इन चीफ की जगह के समान थी।

(3) **अस्त्यानपन्त कोषाध्यक्ष**– जो महामन्त्री से नीचे बैठता था।

(4) **सचवानपन्त एकाउण्टेण्ट**– अर्थात् कोष निरीक्षक या मनसबे आला जो तीसरे नम्बर में बैठता था।

(5) **मन्त्री** – जो राजा का प्रायवेट सेक्रेटरी था।

(6) सामन्त– जो फोरन सेक्रेटरी का दर्जा था, सेनापति के नीचे बाई ओर बैठता था।

(7) पण्डितराव– जो राजा का मुख्य पण्डित था। शास्त्रों में उसकी व्यवस्था प्रामाणिक समझी जाती थी।

(8) न्यायाधीश– उससे बाईं ओर न्यायाधीश।

इसमें से कोई ओहदेदार सदा के लिए नियत नहीं था। शिवाजी का सम्पूर्ण इलाका दो प्रकार के हिस्सों में बंटा था। एक पहाड़ी, दूसरा मैदान का था। मैदान का इलाका भिन्न भिन्न प्रान्तों में बंटा हुआ था। शिवाजी के राज्य में एक और रीति थी वह यह कि जो इलाका बराहेरास्त या उसकी

अमलदारी में था 'शिवाजिया' कहलाता था। जो इलाका मुग़लों के अधीन था परन्तु उसकी आमदनी का चतुर्थांश दिया करता था वह मुग़लिया कहलाता था।

जहां सिर्फ चतुर्थांश से सम्बंध था वहां सिर्फ मालगुजारी का प्रबन्ध रखते थे और बाकी प्रबन्ध से कुछ वास्ता न था। शिवाजी के पास 280 किले थे। प्रथम हम उनके किलों का इन्तजाम (प्रबन्ध) बतलायेंगे। हर एक किले के प्रधान अफसर का नाम हवलदार ाा। उसके नीचे किले की दीवार के हर एक हिस्से के नाम से असिस्टेण्ट थे। इसके सिवाय एक ब्राह्मण क्लर्क (लेखक) किले में रहता था।

जिला और सम्पत्ति सम्बन्धी प्रबन्ध एक ब्राह्मण के आधीन रहता था। सैनिक तथा रसद आदि का प्रबन्ध कमसरियट वाले कर्मचारियों के आधीन था। किले के चारों ओर सफाई आदि के नियम नियन्त्रित थे और जंगली मेहकमों का प्रबन्ध भी उत्तम था।

मैदान का मण्डल– जैसा कि ऊपर कहा गया है कई एक प्रान्तों में विभक्त था। सामान्यतया प्रत्येक प्रान्त की आमदनी एक लाख–सवालाख के लगभग होती थी। प्रत्येक सूबेदार का वेतन 100 के लगभग होता था। कर–प्राप्ति आदि का प्रबन्ध ग्रामीणों एवं ग्रामध्यक्षों के अधीन रहता था। अंग्रेजी सरकार के समान पृथ्वी की नाप का हिसाब सम्पूर्णतया कागजों में लिखा रहता था। दुर्भिक्ष आदि के समय में तकाबी दी जाती और किस्तों में कर वसूल किया जाता था। दीवानी अभियोग ग्रामों की पंचायत के सुपुर्द (अधीन) रहते थे।

फौजदारी का कार्य सूबेदार किया करते थे। हिसाब किताब सर्वथा स्वच्छ और उत्तम था। वर्ष के अन्त में जांच हुआ करती थी हिसाब जोड़ लगाकर बाकी निकाली जाती थी। जो धन राज्य की तरफ निकलता था तत्काल चुका दिया जाता था।

पैदल सेना में दस सिपाहियों में एक नायक नियत था

और 15 नायकों पर एक हवलदार। दो हवलदारों पर एक 'सहास्तक' नामक अध्यक्ष तथा सात अध्यक्षों पर एक जमादार था। 10 जमादारों पर एक अधिकारी नियत था। ये अधिकारी दो प्रकार के होते थे– (1) जागीरदार (2) सतजिलेदार। एक के पास राज्य की तरफ से घोड़ा और दूसरे के पास अपना घोड़ा रहता था। प्रत्येक ऊंचे सेनाध्यक्षों के पास एक क्लर्क (लेखक) रहता था। प्रत्येक को मासिक वेतन नगद दिया जाता था। शिक्षा के लिए मन्दिरों तथा पाठशालाओं और पण्डितों के नाम जागीर रहा करती थी। जिस समय शिवाजी का जन्म हुआ था उस समय दक्षिण में संस्कृत का प्रचार कम था परन्तु शिवाजी के उत्साह एवं पुरूषार्थ से संस्कृत का प्रचार अधिक बढ़ गया था। शिवाजी के समय में दशहरा का उत्सव बड़ी उत्तमता से मनाया जाता था। इस समय पर प्रत्येक सिपाही की सम्पत्ति की सूची बनाई जाती थी। यदि किसी में कुछ कमी हो जाती थी तो दरबार से पूरी की जाती थी। यदि किसी में कुछ कमी हो जाती थी तो दरबार से पूरी की जाती थी। परन्तु लूट–पाट का धन किसी को नहीं मिलता था, सब खजाने में जमा होता था। शिवाजी का गुप्त प्रबन्ध अत्यन्त उत्तम था। उन्हें प्रत्येक स्थान के समाचार सब से पहले मिल जाया करते थे जो सच्चे हुआ करते थे। शत्रु के सेनासम्बन्धी समाचार पूर्णरूप से मिला करते थे जो क्षण–क्षण का समाचार देते थे। इस बात से सम्पूर्ण इतिहासकार सहमत हैं कि शिवाजी के प्रबन्ध में किसी प्रकार की घूस (रिश्वत) आदि नहीं ली जाती थी क्योंकि शिवाजी स्वयं न्यायी एवं विचारशील पुरूष थे।

इत्यलम् ।

www.hindustanbooks.com